दलित और मुस्लिम अंतर्संबंध
साझापन की तलाश और मुश्किलें

कमल नयन चौबे

दलितों और मुस्लिमों के अंतर्संबंधों के अध्ययन में सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि इन दोनों ही समुदायों में आंतरिक रूप से काफ़ी विविधता है। अर्थात जब हम दलित या मुस्लिम शब्द का प्रयोग करते हैं तो हमें यह याद रखने की आवश्यकता है कि इनके भीतर मौजूद कुछ जातियाँ संख्यात्मक स्तर पर बड़ी और आर्थिक रूप से मज़बूत हैं, जबकि बहुत सी अन्य जातियों की स्थिति ज़्यादा ख़राब है। इसके साथ ही, इन दोनों समुदायों के बीच आपसी संबंधों का मसला इसलिए भी पेचीदा हो जाता है क्योंकि जहाँ एक ओर यह माना जाता है कि अगर ये दोनों समुदाय वास्तविक अर्थों में एक साथ आ जाएँ, तो देश की राजनीति की दिशा और दशा बदल सकते हैं, वहीं दूसरी ओर हाल-फ़िलहाल में हुए दंगों में मुस्लिमों के ख़िलाफ़ होने वाली हिंसा में दलित युवाओं के भागीदारी का तथ्य भी सामने आता है, और दलित परिप्रेक्ष्य से लेखन करने वाले कई मूर्धन्य चिंतक यह मानते हैं कि मुस्लिम दलितों के साथ हो रहे अन्याय के मसले पर खुलकर उनका साथ नहीं देते हैं।[1]

इस आलेख में दलित और मुस्लिम संबंधों को तीन स्तरों पर समझने का प्रयास किया गया है। पहले स्तर पर इस बात का विश्लेषण किया गया है कि क्या व्यापक मुस्लिम समुदाय के भीतर भी

[1] कांचा इलैया (2002).
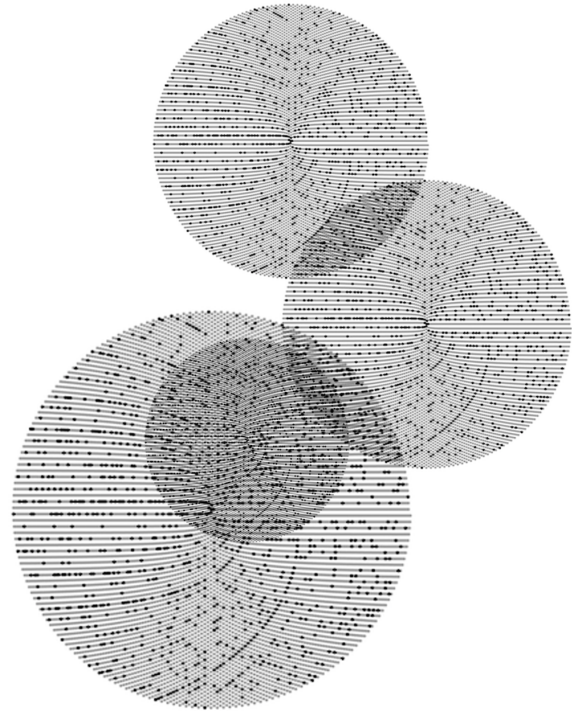
कोई अस्पृश्य या बहिष्कृत तबक़ा है, क्या मुस्लिमों के भीतर दलित हैं? और यदि हैं तो उनकी सामाजिक स्थिति और राजनीतिक चेतना कैसी है? क्या इन दलित-मुस्लिमों को अनुसूचित जाति की श्रेणी में शामिल करने की कोई गुंजाइश है? दूसरे स्तर पर, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) द्वारा दलितों को ख़ुद से जोड़ने के लिए मुस्लिमों को साझा शत्रु के रूप में प्रस्तुत करने की कोशिशों का विश्लेषण किया गया है। आरएसएस द्वारा इतिहास की 'नवीन' व्याख्या करने और आंबेडकर को अपनाने और उनके विचारों को अपने विचारों के अनुरूप साबित करने की कोशिश की गई है। इस संदर्भ में आंबेडकर की पुस्तक *थॉट्स ऑन पाकिस्तान*[2] और आरएसएस द्वारा इसकी व्याख्या का परीक्षण किया गया है। तीसरे स्तर पर, दलितों और मुस्लिमों को साथ लाने की हाल में हुई कोशिशों और इनकी सीमाओं पर विचार किया गया है। इस संदर्भ कांचा इलैया और गेल ऑमवेट के विचारों के परीक्षण के माध्यम से दलित विमर्श की कुछ सीमाओं को रेखांकित करने की कोशिश भी की गई है।

दलित-मुस्लिम : धार्मिक हाशियाकरण और राजनीतिक उपेक्षा का भँवर

हिंदू धर्म में अस्पृश्यता के मसले पर काफ़ी अध्ययन किया गया है, लेकिन मुस्लिम या ईसाई धर्म में इस तरह की परिघटना के बारे में बहुत कम व्यवस्थित अध्ययन किया गया है। अमूमन समाज विज्ञान के शोधों में इस प्रश्न की उपेक्षा ही गई है कि क्या मुस्लिमों में भी ऐसी जातियाँ या समूह हैं, जिनके साथ अस्पृश्यता का व्यवहार किया जाता है, और जिन्हें 'दलितों' की श्रेणी के नज़दीक या उनकी तरह माना जा सकता है? मसलन, हाल-फ़िलहाल में घनश्याम शाह और अन्य का अध्ययन समकालीन भारत में अस्पृश्यता के बारे में एक बेहतरीन अध्ययन के रूप में जाना जाता है किंतु इसमें भी दलित-मुस्लिमों की स्थिति के बारे में विचार नहीं किया गया है।[3] अस्पृश्यता के दायरे में जीवन के सभी क्षेत्र आते हैं, लेकिन इसमें भोजन, निवास, सामाजिक मेल-मिलाप और धार्मिक स्थान में जाने की अनुमति जैसे आयाम ज़्यादा महत्त्वपूर्ण होते हैं। आम तौर पर, हिंदुओं के विपरीत मुस्लिम इन (अस्पृश्यता) व्यवहारों को खुलकर स्वीकार नहीं करते हैं। उनके द्वारा इस बात पर ज़ोर दिया जाता है कि इस्लामिक व्यवस्था में इस तरह के व्यवहारों को धार्मिक वैधता प्राप्त नहीं हैं, और इस्लाम समतावादी मूल्यों पर आधारित है। विशेष तौर पर मुस्लिम की अच्छी पहचान के बारे में जागरूक उलेमाओं आदि द्वारा यह दावा किया जाता है कि मुस्लिमों में जाति का अस्तित्व नहीं होता है। अचरज की बात यह है कि गौस अंसारी[4] और इम्तियाज़ अहमद[5] जैसे विद्वानों द्वारा मुस्लिमों

---

[2] पहली बार यह पुस्तक दिसंबर 1940 में प्रकाशित हुई (पुस्तक में इसका प्रकाशन वर्ष 1941 दर्ज है) इसका दूसरा संस्करण फ़रवरी 1945 और तीसरा संस्करण 1946 में प्रकाशित हुआ. 1945 के संस्करण में इसका शीर्षक बदलकर *पाकिस्तान ऑर पार्टीशन ऑफ़ इंडिया* कर दिया गया. इस दूसरे संस्करण में आंबेडकर ने इस पुस्तक में तीन अन्य अध्याय जोड़े. महाराष्ट्र सरकार ने आंबेडकर *कलेक्टेड वर्क* के खंड में आठ में 1990 में इसे पुनर्प्रकाशित किया. देखें, आंबेडकर (1990). इस आलेख में *थॉट्स ऑन पाकिस्तान* और 1990 में प्रकाशन का संदर्भ दिया गया है, और इसे क्रमश: बी. आर. आंबेडकर (1941) और डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर (1990, प्रथम प्रकाशन 1945) के रूप में उद्धृत किया गया है.

[3] घनश्याम शाह और अन्य (2006).

[4] इम्तियाज़ अहमद (सं.), (1973).

[5] वही.

में जाति के अस्तित्व के बारे में लिखने के बावजूद भी यह भरोसा बना रहा। गौस अंसारी ने 1960 में प्रकाशित अपनी पुस्तक में निम्नलिखित विचार व्यक्त किए : 'एक मुस्लिम या ग़ैर-मुस्लिम भंगी चाहे कितना भी साफ़ हो उसे मस्जिद या अशराफ़, मुस्लिम राजपूतों या स्वच्छ माने जाने वाले काम करने वाली जातियों के यहाँ जाने की अनुमति नहीं होती है... भंगी, चाहे मुस्लिम हो गया ग़ैर-मुस्लिम, उन्हें आम तौर पर उनके बर्तन में खाना दिया जाता है... (और) उन्हें पीने के लिए इस तरह पानी दिया जाता है, ताकि जार उनके होठों को न छुए।'[6] इम्तियाज़ अहमद द्वारा संपादित पुस्तक में भी इस बात का उल्लेख किया गया कि कैसे कुछ 'मुस्लिम भंगियों' के साथ अन्य मुस्लिम खाना नहीं खाते थे और कलकत्ता जैसी जगहों पर उन्हें अपने परिजनों को साझा मुस्लिम क़ब्रगाह में दफ़नाने में काफ़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था।[7] हालाँकि मुस्लिमों के बीच जातिगत भेदभावों के बारे में लंबे समय तक व्यवस्थित अध्ययन करने का प्रयास नहीं किया गया। इसका एक नतीजा यह भी हुआ कि दलित परिप्रेक्ष्य से विचार करने वाले बहुत से विद्वानों ने भी यह मान लिया कि मुस्लिम धर्म में कोई जातिगत भेदभाव नहीं होता है। मसलन, गेल ऑमवेट ने यह विचार व्यक्त किया कि जो लोग मुस्लिम बन गए, वे जातिगत प्रतिबंधों से बच गए।[8]

एक लंबी ख़ामोशी रहने के बाद पिछले दो दशकों में समाज विज्ञान में इस मुद्दे पर बहस की शुरुआत हुई है, और कई अध्ययन हुए हैं। इन अध्ययनों में मुस्लिमों में अस्पृश्यता के अस्तित्व को रेखांकित किया गया है। मसूद आलम फ़लाही ने भी अपनी पुस्तक में यह दिखाया है कि सफ़ाई के काम में लगे मुस्लिम जातियों को बहिष्करण और भेदभाव का सामने करना पड़ता है।[9] दलित मुस्लिमों पर काम करने वाले विद्वानों ने 'धर्मग्रंथीय (टेक्स्चुअल) इस्लाम' और 'व्यवहारीय (लिव्ड) इस्लाम' के बीच अंतर किया है। उन्होंने दलित मुस्लिमों और अन्य सामाजिक समूहों की सामाजिक आर्थिक असमानताओं को रेखांकित किया है, तथा उनके साथ होने वाले अस्पृश्यता के व्यवहारों को सामने लाने का प्रयास किया है। आफ़ताब आलम ने अपने अध्ययन में इस बात पर ज़ोर दिया है कि शुद्धता और अशुद्धता की अवधारणा, स्वच्छ और गंदी जातियाँ मुस्लिम समूहों के बीच भी मौजूद हैं। अशराफ़ मुस्लिमों द्वारा दलित मुस्लिमों को गंदा और अशुद्ध माना जाता है। उनके अनुसार, मुस्लिमों के बीच विभिन्न प्रकार की अस्पृश्यता मौजूद है। अशराफ़ दलित मुस्लिमों द्वारा उपयोग में लाए गए गिलास या बर्तन में पानी पीने से मना कर देते हैं, दलित मुस्लिमों को पानी का स्रोत छूने की अनुमति नहीं देते हैं, और उन्हें खाने के लिए बचा-खुचा भोजन दिया जाता है, और पृथक बस्तियों में रहते हैं। दलित मुस्लिमों के साथ मस्जिदों में भी भेदभाव किया जाता है, और कुछ मामलों में उन्हें आख़िरी पंक्ति में बैठने के लिए कहा जाता है। इस तरह के भेदभावों से बचने के लिए कुछ स्थानों पर दलित मुस्लिमों ने अपनी मस्जिदें बना ली हैं।[10] अली अनवर ने अपनी पुस्तक *मसावात*

---

[6] गौस अंसारी (1960) : 50.

[7] इम्तियाज़ अहमद (1973) : 27-29.

[8] गेल ऑमवेट (2005).

[9] मसूद आलम फलाही (2007).

[10] आफ़ताब आलम (2014) प्रशांत त्रिवेदी और अन्य (2016) में उद्धृत.

की जंग में यह दिखाया है कि रोज़मर्रा के जीवन में अशराफ़ लोगों के द्वारा भेदभाव और अवमानना का व्यवहार किया जाता है। इस तरह का भेदभाव मस्जिदों में होता है, और यहाँ तक कि लोगों की मृत्यु के बाद भी होता है।[11] दलित जातियों के सामाजिक-आर्थिक और 'कर्मकांडीय' हैसियत या स्थिति की तुलना अनुसूचित जाति की श्रेणी में सम्मिलित अन्य जातियों से करते हुए अली अनवर ने यह तर्क दिया है कि 'हमारी यात्रा कमोबेश एक जैसी सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक स्थिति से आरंभ हुई। हमने उनकी तरह कपड़े धोए। हमें भी उनकी तरह धोबी कहा गया। सिर्फ़ एक अंतर यह था कि उनका हिंदू नाम था और हमारा मुस्लिम। हमारी तरह उन्होंने भी गंदगी साफ़ करने का काम किया। मुख्य अंतर यही था कि उन्हें डोम और भंगी कहा गया, और हमें, मेहतर, ख़करोब या हलालख़ोर कहा गया।'[12] अनवर का मुख्य ज़ोर इसी बात पर है कि मुस्लिमों के भीतर भी हिंदुओं में दलितों जैसी स्थिति और हैसियत वाले समुदाय हैं।

दलित-मुस्लिमों के संदर्भ में हमें सबसे बुनियादी स्तर पर यह समझने की आवश्यकता है कि ऐसी किसी श्रेणी को मान्यता नहीं दी गई है। अर्थात कोई भी दलित-मुस्लिम अनुसूचित जाति की श्रेणी का भाग नहीं है। अनुसूचित जातियों की सूची 1936 में जे. एच. हट्टन के द्वारा तैयार की गई, जो 1931 की जनगणना के जनगणना आयुक्त थे। हिंदू जातियों को ही अनुसूचित जनजाति की श्रेणी में शामिल करने के पीछे मूल रूप से यह तर्क दिया गया कि ये जातियाँ प्रत्यक्ष रूप अस्पृश्यता के व्यवहार से जुड़ी हुई हैं, और इन निम्न जातियों के ख़िलाफ़ ही जातिगत प्रतिबंधों का प्रयोग होता है। चूँकि जाति को मूल रूप से हिंदू धर्म से जुड़ी हुई संस्था माना गया, और इसे किसी अन्य धर्म के मूल विश्वासों से जुड़ा हुआ नहीं माना गया इसलिए सिर्फ़ हिंदू दलितों को ही अनुसूचित जातियों की श्रेणी में सम्मिलित करने का फ़ैसला किया गया।[13] लेकिन ऐसा नहीं है कि औपनिवेशिक शासन के दौरान मुस्लिम के भीतर अस्पृश्यता की मौजूदगी के बारे में कोई जानकारी या चर्चा नहीं थी। मसलन, आंबेडकर ने *पाकिस्तान ऑर पार्टिशन ऑफ़ इंडिया* में मुस्लिम धर्म और भारत में उनकी स्थिति और पाकिस्तान की माँग के बारे में कई महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किए हैं। आंबेडकर इस तथ्य पर ज़ोर देते हैं कि अमूमन इस्लाम में भी वैसी ही कई बुराइयाँ मौजूद हैं, जो हिंदू धर्म में हैं। इस संदर्भ में स्त्रियों की स्थिति का विश्लेषण करने के साथ ही आंबेडकर जाति प्रथा के बारे में भी बात करते हैं। उन्होंने 1901 की जनगणना में बंगाल प्रांत के सुपरिंटेंडेंट ऑफ़ सेंशस के विचारों को विस्तार से उद्धृत किया है, जिन्होंने यह बताया था कि बंगाल के मुस्लिमों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। पहला, अशराफ़ या अच्छे हैसियत वाले मुसलमान। इस श्रेणी में सैयद, शेख़, पठान, मुग़ल और मलिक को सम्मिलित किया गया। दूसरा, अजलाफ़ या निम्न वर्ग के मुसलमान। इसमें खेती करने वाले शेख़, दर्ज़ी, जुलाहा, फ़क़ीर, हज्जाम आदि जातियों को सम्मिलित किया गया। और तीसरा, अजराल या सबसे निम्न वर्ग। तीसरे वर्ग में भानर, हलालख़ोर, हिजड़ा, लालबेगी, मउगता और मेहतर जैसी जातियों को सम्मिलित किया गया। आंबेडकर ने इस बात पर ज़ोर दिया कि 'अन्य

---

[11] देखें, अली अनवर (2005); साथ ही देखें, इरफ़ान अहमद (2003).

[12] देखें, अली अनवर (2005) : 2.

[13] सतीश देशपांडे और गीतिका बापना (2008) : 65-66; साथ ही देखें, अश्विनी देशपांडे (2013) : 60-64.

राज्यों में भी वहाँ की जनसंख्या रपटों के माध्यम से इसी तरह के तथ्य एकत्रित किए जा सकते हैं। लेकिन बंगाल का उदाहरण यह दिखाने के लिए काफ़ी है कि मुसलमान सिर्फ़ जाति प्रथा को ही नहीं मानते हैं, बल्कि वे अस्पृश्यता का भी पालन करते हैं।'[14]

वर्ष 1950 में भारत के राष्ट्रपति ने 'कॉन्स्टीट्यूशन (शेड्यूल्ड कॉस्ट्स) ऑर्डर 1950' जारी किया। इसमें उन्होंने संविधान के अनुच्छेद 341 के अनुसार मिले प्राधिकार का उपयोग करते हुए अनुसूचित जाति के रूप में मान्यता प्राप्त जातियों की सूची जारी की। इस आदेश के तीसरे पैराग्राफ़ में यह स्पष्ट किया गया कि हिंदू धर्म के अतिरिक्त किसी भी अन्य धर्म को मानने वाले व्यक्ति को अनुसूचित जाति का सदस्य नहीं माना जाएगा। 1950 के राष्ट्रपति के आदेश में 1956 और 1990 में संशोधन किया गया 1956 के आदेश के माध्यम से कुछ चुनिंदा सिख जातियों और 1990 के आदेश से बौद्ध धर्म के दलित जातियों को अनुसूचित जाति की श्रेणी में सम्मिलित करने का फ़ैसला किया गया। दलित मुस्लिमों या दलित ईसाइयों का इस श्रेणी में स्थान नहीं दिया गया।[15] सरकारी एजेंसियाँ आँकड़ों को एकत्रित करते समय अनुसूचित जाति की श्रेणी में सम्मिलित जातियों पर ही ध्यान केंद्रित करती हैं। ऐसे में, इनके बारे में पर्याप्त आँकड़ा, या अलग से जानकारी प्राप्त न होने के कारण शोधकर्ता इनके बारे में गहन अध्ययन की दिशा में आगे नहीं बढ़ पाते हैं।

> आंबेडकर इस तथ्य पर ज़ोर देते हैं कि अमूमन इस्लाम में भी वैसी ही कई बुराइयाँ मौजूद हैं, जो हिंदू धर्म में हैं। इस संदर्भ में स्त्रियों की स्थिति का विश्लेषण करने के साथ ही आंबेडकर जाति प्रथा के बारे में भी बात करते हैं।

ऐसा नहीं है कि संवैधानिक भेदभाव के ख़िलाफ़ अदालत का दरवाज़ा नहीं खटखटाया गया। विशेष रूप से दलित ईसाइयों द्वारा इसे अदालत में चुनौती दी गई। सर्वोच्च न्यायालय में दायर याचिकाओं में यह कहा गया कि उन्हें अनुसूचित जाति की श्रेणी में सम्मिलित न करना संविधान के अनुच्छेद 14 (क़ानून के सामने समानता), अनुच्छेद 15 (धर्म के आधार पर भेदभाव का निषेध) और 25 (अपने धर्म को मानने की आज़ादी) का उल्लंघन है।[16] ऐसा लगता है कि अदालतें यह बिंदु स्वीकार करने के लिए तैयार रही हैं कि धर्मांतरण के बाद भी जाति क़ायम रहती है। साथ ही, एक ऐसे धर्म को मानने के बावजूद जिसके धर्मग्रंथों में जातिगत भेदभाव का कोई उल्लेख न हो, किसी व्यक्ति को मूल जाति से जुड़ा हुआ माना जा सकता है। न्यायालय ने इस दावे को नकार दिया है कि
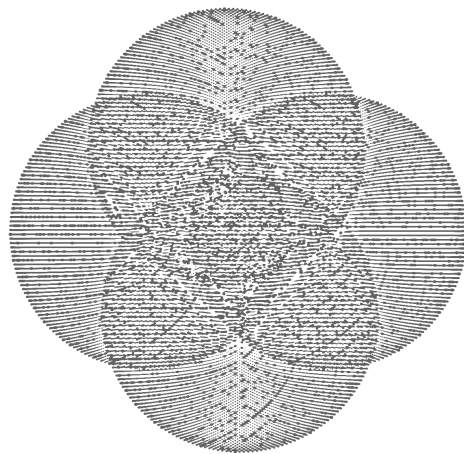
[14] डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर (1990, प्रथम प्रकाशन 1945) : 230.

[15] सतीश देशपांडे और गीतिका बापना (2008) : 65-66.

[16] वही : 65.

विवाह के द्वारा जाति हासिल की जा सकती है।[17] लेकिन अदालत के द्वारा यह माना गया है कि धर्मांतरण और पुनर्धर्मांतरण के बावजूद जाति क़ायम रहती है।[18] इस तरह, अन्य धर्मों को अपनाने वाले लोगों के जाति की स्थिति, या ग़ैर-हिंदू के रूप में जन्म लेने वाले लोगों की जाति की स्थिति अदालतों के लिए मुख्य मुद्दा नहीं है। बहरहाल, सबूत की कसौटी और मानकों के बारे में काफ़ी वाद-विवाद रहा है। इस संदर्भ में सूसाई केस काफ़ी महत्त्वपूर्ण है। इसमें जस्टिस पाठक ने अपने निर्णय में यह कहा कि 'यह दिखाना पर्याप्त नहीं है कि धर्मांतरण के बाद भी वही जाति क़ायम रही। बल्कि इसके आगे यह स्थापित करना भी आवश्यक है कि संबंधित व्यक्ति अपने मूल हिंदू धर्म की जाति में जिन बाधाओं का सामना कर रहा था, वे भिन्न धार्मिक समुदाय के नए वातावरण में भी उतने दमनकारी गहनता के साथ मौजूद हैं।'[19] इसी निर्णय में यह भी कहा गया कि इस संदर्भ में सबूत देने का दायित्व राज्य का नहीं है, बल्कि उस पक्ष का है जो अपने साथ मनमाना व्यवहार होने की शिकायत कर रहा है।[20]

यहाँ मुस्लिम समुदाय के भीतर अस्पृश्यता की मौजूदगी के बारे में हाल में हुए दो अध्ययनों का उल्लेख करना आवश्यक है। प्रशांत त्रिवेदी और अन्य[21] ने अपने विस्तृत सर्वेक्षण के आधार पर मुस्लिमों के बीच अस्पृश्यता और बहिष्करण का अध्ययन किया है। वहीं, जॉयल ली ने मानवशास्त्रीय अध्ययन के आधार पर हलालख़ोर जाति का अध्ययन किया है।[22] प्रशांत त्रिवेदी और अन्य का यह तर्क है कि दलित मुस्लिमों को लेकर हुए या तो व्यक्तिगत अनुभवों पर आधारित हैं या फिर बहुत छोटे स्तर के सर्वेक्षणों पर। उनके अनुसार, इसी कारण सरकार ने इस मुद्दे को ज़्यादा गंभीरता से नहीं लिया है। अपने इस अध्ययन में उन्होंने ज़्यादा व्यापक अनुभवसिद्ध अध्ययन के माध्यम से मुस्लिमों में अस्पृश्यता के व्यवहार का अध्ययन किया है।[23] इस अध्ययन में एकत्रित किए गए

---

[17] वलसम्मा पॉल (मिसेज) वर्सस कोचीन युनिवर्सिटी ऐंड अदर्स, केरला पब्लिक सर्विस कमीशन वर्सस डॉ. कनजम्मा एलेक्स ऐड अनदर (1996), एससी 3950. सतीश देशपांडे और गीतिका बापना (2008): 70 पर उद्धृत.

[18] एस. अनबालागन वर्सस बी. देवाराशन ऐंड अदर्स (1984) एआईआर, एससी 411, सतीश देशपांडे और गीतिका बापना (2008) : 70 पर उद्धृत.

[19] सूसाई वर्सस यूनियन ऑफ़ इंडिया ऐंड अदर्स (1985) एससीसी 590. सतीश देशपांडे और गीतिका बापना (2008) : 71 पर उद्धृत.

[20] इस संदर्भ में जितने मुक़दमे हुए वे मुख्य रूप से दलित ईसाइयों द्वारा हुए, यह दलित मुस्लिम के बीच इस मसले को लेकर कम जागरूकता होने की ओर संकेत करता है. देखें, सतीश देशपांडे और गीतिका बापना (2008) : 65-67.

[21] प्रशांत त्रिवेदी और अन्य (2016).

[22] जॉयल ली (2018).

[23] प्रशांत त्रिवेदी और अन्य ने अपने शोध में उत्तर प्रदेश के 14 ज़िलों में घर-घर सर्वेक्षण करके ग़ैर-दलित मुस्लिमों और हिंदुओं के दलितों मुस्लिमों के साथ अस्पृश्यता के व्यवहार के बारे में अंतर्विरोधी दावों की जाँच-पड़ताल की है. बहरहाल, यह सच है कि जनगणना या नैशनल सैंपल सर्वे या नैशनल हेल्थ सर्वे या इंडियन ह्यूमन डिवेलपमेंट सर्वे जैसे बड़े सर्वेक्षणों में दलित मुस्लिम जातियों के बारे में अलग से अध्ययन नहीं किया जाता है, बल्कि उन्हें आधिकारिक रूप से ओबीसी की श्रेणी के रूप में रखा जाता है. इसके कारण, विभिन्न मुस्लिम दलित जातियों के बारे में जानकारी नहीं मिल पाती है. इन जातियों को पहचानने के लिए दो स्तरीय तरीक़े को अपनाया गया : पहला, इन्हें ऐसे पेशे में लगे समूहों से पहचाना गया जिन पेशों से जुड़े हिंदू पहले से ही अनुसूचित जनजाति की श्रेणी में सम्मिलित हैं. दूसरा, पहले के अध्ययनों में जिन जातियों को सम्मिलित किया गया था, उन्हें भी अनुभवसिद्ध प्रमाणीकरण के लिए सम्मिलित किया गया। इस तरह, दलित मुस्लिम जातियों में निम्नलिखित जातियाँ

आँकड़ों के अनुसार दलित मुस्लिमों के एक बड़े अनुपात ने यह बताया कि उन्हें ग़ैर-दलितों के विवाह भोज आदि में आमंत्रण नहीं मिलता है। एक चौथाई ग़ैर-दलित मुस्लिमों ने यह कहा कि उनके गाँव में कोई दलित-मुस्लिम परिवार नहीं है। हालाँकि तीन-चौथाई दलित परिवारों ने यह कहा कि उन्हें आमंत्रण मिलता है। ऐसे समारोहों/पारिवारिक उत्सवों में बैठने की व्यवस्था के बारे में पूछे जाने पर दलित-मुस्लिमों के एक तबक़े ने कहा कि उन्हें ग़ैर-दलित मुस्लिमों के पारिवारिक आयोजनों में अलग बिठाया जाता है। तक़रीबन इतने ही लोगों ने यह भी कहा कि उन्हें उच्च जाति के लोगों के खाना खा लेने के बाद खिलाया जाता है। तक़रीबन 5 से 10 प्रतिशत लोगों ने यह भी कहा कि उन्हें अलग तरीक़े के प्लेटों में खाना दिया जाता है। निश्चित रूप से यह मुस्लिमों के बीच अस्पृश्यता के अस्तित्व को दिखाता है।[24] इस सर्वेक्षण के अनुसार शिक्षा और संपत्ति के मामले में ऊपर की ओर जाने पर अस्पृश्यता में वृद्धि हुई, और ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में शहरी क्षेत्रों में इस प्रकार की अस्पृश्यता ज़्यादा थी।[25]

एक-तिहाई दलित मुस्लिमों ने यह कहा कि उन्हें उच्च जाति के क़ब्रिस्तान में अपने परिजनों को दफ़नाने की अनुमति नहीं मिलती है। या तो उन्हें किसी अन्य क़ब्रिस्तान में जाना पड़ता है या वे उसी क़ब्रिस्तान में कोने में अपने परिजनों को दफ़नाते हैं। अधिकांश मुस्लिम एक ही मस्जिद में नमाज अदा करते हैं लेकिन कुछ स्थान पर दलित मुस्लिमों ने यह कहा कि मुख्य मस्जिद में उनके साथ भेदभाव किया जाता है। बहुत से दलित दलित मुस्लिमों ने यह भी कहा कि उनके समुदाय को छोटे काम से जुड़ा हुआ माना जाता है।[26] उच्च जाति के मुस्लिमों के घरों में अपने अनुभवों को बताते हुए 13 प्रतिशत दलित मुस्लिमों ने यह कहा कि उन्हें खाना या पानी अलग बर्तन में दिया जाता है। उच्च जाति के हिंदू घरों में यह अनुपात 46 प्रतिशत था। इसी तरह, 20 प्रतिशत दलित मुस्लिमों ने यह कहा कि उच्च जाति के मुस्लिम उनसे दूरी बनाकर रखते हैं, वहीं 25 प्रतिशत मुस्लिमों ने यही बात उच्च जाति के हिंदुओं के बारे में कही। उच्च जाति के मुस्लिमों से बातचीत में यह बात सामने आई कि 27 प्रतिशत उच्च जाति के मुस्लिमों के मोहल्ले में दलित मुस्लिमों का कोई घर नहीं था। 20 प्रतिशत उच्च जाति के मुस्लिमों ने यह कहा कि उनका दलित मुस्लिमों से कोई सामाजिक मेल-जोल नहीं हैं। जिन घरों में दलित-मुस्लिम जाते थे, उनमें से 20 प्रतिशत ने यह कहा कि वे उन्हें खाने की वस्तुएँ नहीं देते हैं, या फिर एक जैसे बर्तन में नहीं देते हैं। इस अध्ययन में प्रस्तुत आँकड़ों से यह बात साफ़ होती है कि अस्पृश्यता का व्यवहार सिर्फ़ हिंदू धर्म तक सीमित नहीं है। इसका विस्तार काफ़ी व्यापक है और शायद मुस्लिम सहित कोई भारतीय धार्मिक समुदाय इससे अछूता होने का दावा नहीं कर सकता है। बहरहाल, यह स्वीकर करने की आवश्यकता है कि जब इस सामाजिक व्यवहार को उत्साहपूर्वक लागू करने की बात आती है तो इस मामले में उच्च

सामने आईं : भटियारा, फकीर, शाह, डफाली, नट, हलालख़ोर, लालबेगी, बंजारा, धोबी, रांकी, रंगरेज़, जोगी, मोची, मुकेरी, बाखो और भिश्ती. कुल मिलाकर उत्तर प्रदेश के 14 ज़िलों में स्थित 7,195 परिवारों का सैंपल एकत्रित किया गया. प्रशांत त्रिवेदी और अन्य (2016) : 33.

[24] वही : 34.

[25] वही : 34-35.

[26] वही : 35.

जाति के मुस्लिम उच्च जाति के हिंदुओं से काफ़ी पीछे हैं।[27]

जॉयल ली ने पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार में ऐतिहासिक और एथनोग्राफ़िक अध्ययन के माध्यम से यह दिखाने का प्रयास किया है कि कैसे हलालख़ोर (एक जाति का नाम, जिसका अर्थ ईमानदारी से जीविका अर्जित करने वाला होता है) की अवधारणा के जिनियोलॉजिकल और ऐथिकल वृत्तांतों के माध्यम से अपने सह-धर्मियों के उच्चतर हैसियत की समीक्षा करते हैं, और एक ज़्यादा समतावादी इस्लामिक समुदाय को उत्पन्न करते हैं। इस आलेख में लेखक ने ऐतिहासिक रेकार्ड और मुस्लिम किंवदंतियों में इसके प्रयोग के द्वारा इस समुदाय की उत्पत्ति और सफ़ाई के काम से इसके जुड़ाव को समझने का प्रयास किया है। जॉयल ली के अनुसार, उत्तर भारत में दलित मुस्लिमों की दुनिया में उन्हें रोज़मर्रा के जीवन में जाति के व्यवहारों और इस्लामिक नीतिशास्त्र के बीच के अंतर्विरोधों का सामना करना पड़ता है। मैनुअल स्कैवेंजिग और सफ़ाई से संबंधित अन्य कामों में लगे दलित मुस्लिम इन अंतर्विरोधों का लगातार सामना करते हैं, क्योंकि उनके काम का स्थान और उसका प्रभाव जॉयल ली के शब्दों में 'अंतरंग अस्पृश्यता' (इंटीमेट अनटचेबिलिटी) को बढ़ावा देता है।[28]

जॉयल ली का यह मानना है कि पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार में मुस्लिम हलालख़ोर, हेला, डोम और वाल्मीकि जैसी जातियों के साथ-साथ सफ़ाई के काम में लगे हुए हैं। और इन्हें भी इनकी तरह ही रोज़मर्रा के जीवन में जातिगत अवमानना का सामना करना पड़ता है। लेकिन जहाँ बाद की तीन जातियाँ अनुसूचित जनजातियों की श्रेणी में शामिल हैं, वहीं हलालख़ोर इस्लाम का अनुयायी होने के कारण इस श्रेणी से बाहर हैं।[29] ऐसा लगता है कि पिछले 50 वर्षों में मस्जिद पर प्रवेश पर रोक को हटा लिया गया है किंतु इन अंतर्विवाह पर रोक जारी है, जो कि जाति व्यवस्था को क़ायम रखने की अनिवार्य शर्त है।[30] 1940 के दशक में हलालख़ोरों द्वारा किए गए संघर्षों के कारण ही उन्हें मस्जिदों में प्रवेश की अनुमति मिली।[31] बहरहाल, ली के अध्ययन से अस्पृश्यता का सामना करने वाले एक दलित-मुस्लिम जाति के भीतर अपनी स्थिति और अपने काम को लेकर मौजूद सोच की झलक भी मिलती है। जॉयल ली हलालख़ोर लोगों की उत्पत्ति के बारे में ओरल हिस्ट्री का सहारा लेते हुए यह बताते हैं कि हलालख़ोर यह मानते हैं कि उनके पूर्वजों ने बीमारी के समय पैगंबर की देखभाल और साफ़-सफ़ाई का काम किया। हालाँकि इस्लामिक धर्मग्रंथों में इसका उल्लेख नहीं मिलता, किंतु हडिथ में ऐसे कुछ लोगों को उल्लेख मिलता है जिन्होंने बीमारी के समय पैगंबर की देख-भाल की। हलालख़ोर अपने लोक धर्मशास्त्र (फ़ोक थियॉलजी) में इस स्थिति को अंतरंग स्पृश्यता (इंटीमेट टचेबिलिटी) के रूप में प्रस्तुत करते हैं (यानी, कमज़ोर स्थिति में सहयोग, शारीरिक साफ़-सफ़ाई या घरेलू साफ-सफ़ाई में सहयोग करने वाले लोग)।[32] इसका अर्थ यह निकाला जा सकता है कि हलालख़ोर मैनुअल स्कैवेंजिंग (मैला ढोने) के काम को सही मानते हैं, लेकिन जॉयल ली के अनुसार, इस कहानी को बताने वाले, या जितने भी लोगों से उन्होंने बात की, उन सभी ने मैला ढोने के काम को

---

[27] वही : 35-36.

[28] जॉयल ली (2018).

[29] वही : 5.

[30] वही : 7.

[31] वही : 9.

[32] वही : 22.

छोड़ देने का उल्लेख किया, और उन्होंने इसे अपने समुदाय की प्रगति के रूप में रेखांकित किया। जॉयल ली के अनुसार, 'हलालख़ोर की उत्पत्ति से जुड़ी मौखिक परंपरा से यह बात सामने आती है कि इनकी राजनीति में मौजूदा दलित राजनीति व्यवहार के वर्गीकरणों को सम्मिलित नहीं किया जा सकता है। यह एक इस्लामिक राजनीति है, जो एक साथ यूटोपियाई, प्रभुत्वशाली जातियों की आलोचक और परंपरा को अपील करने वाली है।'[33] हलालख़ोर समुदाय से जुड़े बहुत से लोग यह मानते हैं कि सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सरकार इस बात को मान्यता दे कि इस श्रेणी से जुड़े लोगों ने लंबे समय से अस्पृश्यता के संरचनात्मक हिंसा को झेला है, और वे अभी भी इसे झेल रहे हैं। इनका यह भी मानना है कि 1950 में इन्हें अनुसूचित जाति की श्रेणी से बाहर रखकर एक ऐतिहासिक भूल की गई, जिसे लोकतांत्रिक राजनीतिक साधनों द्वारा सुधारा जा सकता है, और सुधारा जाना चाहिए।[34]

ली के अध्ययन से अस्पृश्यता का सामना करने वाली एक दलित-मुस्लिम जाति के भीतर अपनी स्थिति और अपने काम को लेकर मौजूद सोच की झलक भी मिलती है। जॉयल ली हलालख़ोर लोगों की उत्पत्ति के बारे में ओरल हिस्ट्री का सहारा लेते हुए यह बताते हैं कि हलालख़ोर यह मानते हैं कि उनके पूर्वजों ने बीमारी के समय पैग़ंबर की देखभाल और साफ़-सफ़ाई का काम किया।

दलित-मुस्लिमों के बारे में मौजूदा अध्ययनों के आधार पर कुछ बिंदुओं को रेखांकित किया जा सकता है : पहला, मुस्लिम समुदाय में एक ऐसा तबक़ा है जो अस्पृश्यता और बहिष्करण का सामना करता है। दूसरा, जनसंख्यात्मक रूप से सिर्फ़ मुस्लिम समुदाय की गणना होने के कारण दलित-मुस्लिम अपनी वास्तविक जनसंख्यात्मक स्थिति के बारे में जागरूक नहीं है। सुदीप्त कविराज ने औपनिवेशिक दौर में जनगणना आरंभ होने से पहले 'धुँधले' (फजी) समुदाय की परिकल्पना प्रस्तुत की है। औपनिवेशिक दौर में हुए बदलावों को रेखांकित करते हुए उन्होंने यह विचार व्यक्त किया कि 'औपनिवेशिक प्रशासकों ने संज्ञानात्मक व्यवहारों (कॉग्निटिव प्रैक्टिसेज़) को लागू करते हुए पहचानों में बदलाव किया। उन्होंने पहले के फजी या अस्पष्ट पहचानों को आधुनिक एन्यूमेरेटेड या गणना किए हुए समुदायों में बदल दिया। इसके लिए उन्होंने मैपिंग और जनगणना जैसे साधनों का प्रयोग करके सामाजिक विश्व की गणना की, और समूहों को एक एजेंटिव या कर्तायुक्त राजनीतिक पहचान देकर सामाजिक सत्तामीमांसा (सोशल ऑन्टोलॉजी) को हमेशा के लिए बदल
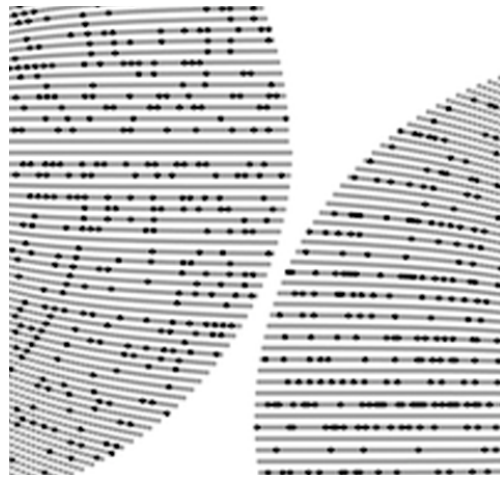
[33] वही : 23-24.

[34] वही : 24.

दिया।'[35] मौजूदा समय में दलित-मुस्लिम धुँधले या अस्पष्ट समुदाय के रूप हैं। इसके कारण न तो ये ख़ुद को राजनीतिक रूप से गोलबंद कर पाते हैं, और न ही रानजीतिक दल इन्हें गंभीरता से लेते हैं। एक बड़े मुस्लिम पहचान के भीतर इनकी पहचान समाहित हो गई है। शायद इसीलिए दलित-मुस्लिमों के रूप में न तो इनकी माँगें ठोस राजनीतिक रूप ले पाती हैं, और न ही राजनीतिक दल इन्हें गंभीरता से लेते हैं। तीसरा, व्यापक मुस्लिम पहचान ने इनकी व्यक्तिगतता या सब्जेक्टिविटी को भी प्रभावित किया है, अर्थात ये अपनी स्थिति के लिए मुस्लिम धर्म या इसके वर्चस्वशाली भूमिका पर ज़्यादा गहराई से विचार करने के बजाय अपनी मुस्लिम पहचान के साथ गहराई से जुड़े हुए हैं, और साथ ही इनमें अशराफ़ मुस्लिमों के सांस्कृतिक रूपकों को अपनाने की प्रवृत्ति ज़्यादा है। यह काफ़ी हद तक उस परिघटना की तरह है, जिसे एक अन्य संदर्भ में एम. एन. श्रीनिवास ने संस्कृतीकरण के रूप में व्याख्यायित किया है।[36] चौथा, इनकी आर्थिक स्थिति काफ़ी दयनीय है। सतीश देशपांडे और गीतिका बापना ने अपने अध्ययन में यह रेखांकित किया है कि 'निर्धनता या समृद्धि में जनसंख्या के अनुपात के संदर्भ में ग्रामीण और शहरी — दोनों ही क्षेत्रों में दलित-मुस्लिम सभी दलितों से बुरी स्थिति में हैं। शहरी भारत के समृद्ध तबक़े में दलित मुस्लिम पूरी तरह ग़ायब हैं।'[37] पाँचवाँ, राज्य या समुदाय द्वारा दलित मुस्लिमों के मुद्दे पर कभी ध्यान न दिए जाने का कारण यह है कि अमूमन यह विमर्श बहुत से स्तरों पर पाखंड का शिकार रहा है। भारत के संविधान द्वारा भारतीय राज्य को यह निर्देश और ज़िम्मेदारी दी गई है कि वह धर्म, नस्ल, जाति, लिंग आदि के आधार पर किसी भी नागरिक के साथ भेदभाव न करे। लेकिन अनुसूचित जाति की श्रेणी को सिर्फ़ तीन धर्मों तक सीमित रखकर भारतीय राज्य स्पष्ट रूप से भेदभाव करने और इसके बढ़ावा देने का ही काम कर रहा है। इन समुदायों द्वारा अपने अधिकारों की माँग के किसी प्रयास को रूढ़िवादी मुस्लिमों द्वारा कुरान के आयतों का उद्धरण देकर विरोध किया गया है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि दलित-मुस्लिमों के अस्तित्व और अधिकारों को सुनिश्चित रूप से मान्यता दिलाने के लिए एक लंबे संघर्ष की आवश्यकता है।

दलित, मुसलमान और हिंदुत्ववादी राजनीति

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) और उसके कार्यकर्ताओं ने मुस्लिमों के बारे में दलितों के मन में रूढ़बद्ध धारणा या स्टीरियोटाइप बनाने का भी प्रयास किया है। इस संदर्भ में उनके द्वारा आंबेडकर द्वारा लिखी गई पुस्तक *थॉट्स ऑन पाकिस्तान* (जिसे दूसरे संस्करण में *पाकिस्तान ऑर द पार्टिशन ऑफ़ इंडिया* शीर्षक से प्रकाशित किया गया) में प्रकाशित विचारों के आधार पर यह साबित करने का प्रयास किया जाता है कि आंबेडकर इस्लाम की कट्टरता से परिचित थे, और वे मुस्लिमों को

[35] सुदीप्त कविराज 2010 (प्रथम प्रकाशन : 2003) : 219; साथ ही देखें, सुदीप्त कविराज (1992).

[36] एम. एन. श्रीनिवास ने समाजशास्त्र में संस्कृतीकरण की अवधारणा को 1950 के दशक में लोकप्रिय बनाया. इसका तात्पर्य यह है कि जब निम्न जातियों को प्रगति करने का मौक़ा मिलता है, तो वे उच्च जातियों के सांस्कृतिक व्यवहार अपनाकर उनके जैसा बनने का प्रयास करती हैं. श्रीनिवास के विचारों की समझ के लिए देखें एम.एन. श्रीनिवास (1994; प्रथम प्रकाशन 1962); क्रिस्तॉफ़ जैफ़्रलो ने यह तर्क दिया है कि श्रीनिवास से तक़रीबन 40 वर्षों पूर्व आंबेडकर ने अपनी पुस्तक *कास्ट्स इन इंडिया : देयर मैकेनिज़म, जेनेसिस ऐंड डिवेलपमेंट* में इस तरह की परिघटना की ओर संकेत किया था. क्रिस्तॉफ़ जैफ़्रलो (2006) : 33.

[37] सतीश देशपांडे और गीतिका बापना (2008) : 9.

भरोसा करने लायक़ नहीं मानते थे। हालाँकि आंबेडकर ने अपनी इस पुस्तक में मुख्य रूप से मुस्लिम लीग द्वारा पाकिस्तान बनाने का प्रस्ताव पारित करने के संबंध में बनी स्थितियों और संभावनाओं का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं। लेकिन इसी प्रक्रिया में आंबेडकर के वर्णन में कई ऐसे दृष्टांत सामने आते हैं, जिसे मौजूदा समय में आरएसएस नेतृत्व अपनी समझ के अनुरूप मानता है। मसलन, इस पुस्तक के 'कम्युनल अग्रेसन' शीर्षक अध्याय में ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं जहाँ आंबेडकर मुस्लिमों का इस तरह वर्णन करते हैं जिससे उनकी अत्यंत नकारात्मक छवि सामने आती है। मिसाल के तौर पर, उनके अनुसार, 'मुस्लिमों के बारे में ध्यान देने वाली दूसरी बात यह है कि उनके भीतर हिंदुओं की कमज़ोरी का फ़ायदा उठाने की भावना होती है। यदि हिंदू किसी चीज पर आपत्ति करते हैं तो ऐसा लगता है कि मुस्लिमों की नीति उस पर ज़ोर देने की होती है, और वे तभी मानते हैं जब हिंदू उन्हें कुछ अन्य छूटों की क़ीमत देने के लिए तैयार हो जाते हैं।'[38] इसी तरह, गो-हत्या पर मुस्लिमों के व्यवहार की आलोचना करते हुए वे लिखते हैं कि 'मुस्लिमों की दोहन की भावना का एक अन्य उदाहरण उनके द्वारा गो-हत्या पर ज़ोर देना और मस्जिद के सामने संगीत बजाने पर रोक लगाना है। इस्लाम का क़ानून क़ुर्बानी देने के मक़सद के लिए गाय की हत्या पर ज़ोर नहीं देता है, और जब भी कोई मुसलमान हज के लिए जाता है तो वह मक्का और मदीना में गायों की बलि नहीं देता है। लेकिन भारत में वे किसी भी अन्य जीव की क़ुर्बानी से संतुष्ट नहीं होते हैं। एक मुस्लिम देश में मस्जिद के सामने बिना किसी आपत्ति के संगीत बजाया जा सकता है ... लेकिन भारत में मुसलमान इस पर सिर्फ़ इसलिए ज़ोर देते हैं क्योंकि हिंदू ऐसा करने के अपने अधिकार का दावा करते हैं।'[39] इसी तरह, उन्होंने मुस्लिमों की राजनीति की आलोचना करते हुए यह रेखांकित किया कि 'मुस्लिमों ने राजनीति की गैंगस्टर पद्धति को अपना लिया है। दंगे इस बात का पर्याप्त प्रमाण हैं कि गैंगस्टरवाद राजनीति की रणनीति का एक सुनिश्चित भाग बन चुका है।[40] वे हिंदुओं की इसी तरह की राजनीति को मुस्लिमों की राजनीति की प्रतिक्रिया मानते हैं। लेकिन आंबेडकर हिंदू महासभा की 'मुस्लिमों के सफ़ाए की राजनीति' को पूरी तरह नकार देते हैं। आंबेडकर के अुनसार, 'हिंदू महासभा के सरल दिमाग़ वाले देशभक्त यह विश्वास करते हैं कि हिंदुओं को मुसलमानों का सफ़ाया करने का फ़ैसला कर लेना चाहिए, ऐसा करके ही मुसलमानों को सबक़ सिखाया जा सकता है...हिंदू महासभा की योजना एकता लाने वाली नहीं है। इसके विपरीत, यह प्रगति के रास्त में बाधा है। हिंदू महासभा के अध्यक्ष का यह नारा कि हिंदुस्तान हिंदुओं का है, न सिर्फ़ अहंकार से भरा हुआ बल्कि पूरी तरह से बेतुका है।'[41]

हालाँकि इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि हिंदू महासभा की 'मुस्लिमों के सफ़ाए' की राजनीति को पूरी तरह नकार देने के बावजूद आंबेडकर को मुस्लिमों की राजनीति पर गहरा संदेह था, या फिर वे इसके बारे में एक निष्कर्ष तक पहुँच चुके थे। उनका निष्कर्ष मुस्लिमों और हिंदुओं — दोनों के बारे में एक तरह के इसेंसियलिज़म या तत्त्ववाद का प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें

[38] डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर (1990) : 268.

[39] वही : 269.

[40] वही : 269.

[41] वही : 269-70.

वे मुस्लिमों के भीतर की वैचारिक और अन्य भिन्नताओं की अवहेलना करते हुए उन्हें कुछ रूढ़बद्ध गुणों के आधार पर परिभाषित करते हैं और कई स्थानों पर नकारात्मक रूप से चित्रित करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वे यह मानकर चल रहे हैं कि हर मुसलमान मुस्लिम लीग के साथ है, वह हिंदुओं के भय के कारण सुधार के लिए तैयार नहीं है, और उसकी राजनीतिक सोच कट्टरता से प्रेरित है।

पार्थ चटर्जी ने आंबेडकर की इस पुस्तक का विश्लेषण करते हुए यह विचार व्यक्त किया है कि आंबेडकर ने इस पुस्तक में अपने पहले के विचारों की तुलना में एक भिन्न सैद्धांतिक विचार प्रस्तुत किया। अभी तक आंबेडकर लगातार यह तर्क देते आए थे कि भारत के बहुत सारे अल्पसंख्यक समुदायों में से सिर्फ़ मुस्लिमों और दलित वर्गों (डिप्रेस्ड क्लासेज) जैसे कुछ अल्पसंख्यक समूहों को छोड़कर किसी को भी निरंकुश बहुमत से सुरक्षित रखने के लिए विशेष राजनीतिक प्रतिनिधित्व देने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन अब उन्होंने यह घोषणा की कि जहाँ अछूत, ईसाई और पारसी अल्पसंख्यक समुदाय हैं, वहीं मुस्लिम एक राष्ट्र हैं।[42] चटर्जी के अनुसार, इस पुस्तक के आख़िरी पृष्ठों पर आंबेडकर ने यह टिप्पणी की कि इस अंतर का तात्कालिक रूप से कोई प्रभाव नहीं है क्योंकि एक अल्पसंख्यक समुदाय और एक छोटे राष्ट्र — दोनों को ही बहुमत के दमन से सुरक्षा की आवश्यकता होती है। किंतु *थॉट्स ऑन पाकिस्तान* की प्रस्तावना में (जो शायद पुस्तक को ख़त्म किए जाने के बाद लिखी गई होगी) आंबेडकर यह तर्क देते हैं कि एक राष्ट्र होने के कारण मुस्लिम सिर्फ़ चुने हुए संसद में विशेष प्रतिनिधित्व के ही हक़दार नहीं हैं, बल्कि उन्हें आत्म-निर्णय या सेल्फ़ डिटरमिनेशन का भी अधिकार है।[43]

इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि वर्तमान दौर में आरएसएस को आंबेडकर के ये विचार अपनी राजनीति के लिए मुफ़ीद लगते हैं, और उससे जुड़े नेता और बुद्धिजीवी समय-समय पर इसका प्रयोग भी करते हैं। सिर्फ़ निचले स्तर के आरएसएस कार्यकर्ता ही इस पहलू पर ज़ोर नहीं देते हैं, बल्कि उच्च स्तर के नेता और यहाँ तक ख़ुद सरसंघचालक मोहन भागवत भी इस आयाम को प्रमुखता से सामने लाने का प्रयास करते रहे हैं। मसलन, 2019 के कुंभ मेला के दौरान 31 जनवरी, 2019 को विश्व हिंदू परिषद द्वारा आयोजित 'धर्म संसद' में साधु-संतों को संबोधित करते हुए आरएसएस के सरसंघचालक ने यह कहा कि 'बाबासाहेब भीमराव आंबेडकर मुस्लिमों के कुत्सित मंसूबों से परिचित थे, इसलिए वे मुस्लिमों के साथ किसी भी (राजनीतिक) जुड़ाव के ख़िलाफ़ थे।...अब दलित-मुस्लिम गठजोड़ की बात की जा रही है, लेकिन बाबासाहेब ख़ुद इन जेहादियों को

---

[42] बी. आर. आंबेडकर (1941): 337-9, चटर्जी (2018) : 120 पर उद्धृत.

[43] वही : 4-5, चटर्जी (2018) : 120 पर उद्धृत. आंबेडकर के विश्लेषण में पाकिस्तान के एक व्यवहार्य राज्य के रूप में निर्माण के साधन के तौर पर मुस्लिम आत्म-निर्णय की व्यवहार्यता तथा भारत में खंडित हिंदू राज्य की शक्ति का मूल्यांकन किया गया है. वे सिर्फ़ जनसंख्यात्मक प्रश्न का ही अध्ययन नहीं करते हैं, बल्कि वित्तीय संसाधनों, प्रशासनिक क्षमता तथा सशस्त्र बलों के सामर्थ्य और मनोबल का विश्लेषण करते हुए यह निष्कर्ष निकालते हैं कि पाकिस्तान का निर्माण, और इसके साथ पंजाब और बंगाल का विभाजन, और कुछ निश्चित क्षेत्रों में जनसंख्या का पर्यवेक्षित आदान-प्रदान मुस्लिमों और हिंदुओं के लिए एक अच्छा समाधान होगा. पार्थ चटर्जी (2018) : 122; आंबेडकर द्वारा *थॉट्स ऑन पाकिस्तान* में प्रस्तुत पाकिस्तान के पक्ष और विपक्ष के विशिष्ट विश्लेषण की विवेचना हाल के समय में इतिहासकार फ़ैसल देवजी और वेंकट धुलिपला ने किया है। देखें फ़ैसल देवजी (2013) : 166.200; वेंकट धुलिपला (2015) : 120-190.

भरोसे के लायक़ नहीं मानते थे। हमें लोगों को इस बारे में जागरूक करने की आवश्यकता है।'[44] आरएसएस समर्थक व्हाट्सएप ग्रुप्स या वेबसाइट्स पर इस तरह के संदेश या लेख भरे होते हैं , जिसमें आंबेडकर को मुस्लिम विरोधी या मुस्लिमों को संदिग्ध मानने वाला दिखाया जाता है। इस तरह के लेखों या संदेशों के प्रसार के माध्यम से आरएसएस और उससे जुड़े दलित चिंतक या कार्यकर्ता दलितों के मन में मुस्लिमों के प्रति संदेह और शत्रुताभाव को बढ़ाने का प्रयास करते हैं।[45]
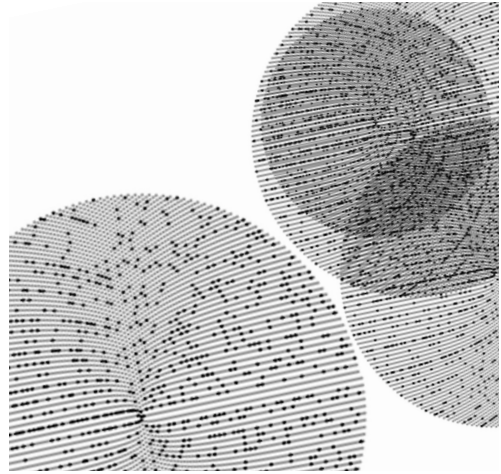
हालाँकि बहुत से विद्वान यह मानते हैं कि आंबेडकर ने अपने विचारों में इस्लाम और हिंदू धर्म — दोनों की कमियों को रेखांकित किया था,[46] इसलिए हिंदू धर्म की उनकी आलोचना को भुलाकर सिर्फ़ इस्लाम की उनकी आलोचना को सामने रखना आंबेडकर के विचारों को आंशिक और मनमाने रूप से प्रस्तुत करने की तरह है। ग़ौरतलब है कि आंबेडकर भारतीय संविधान की प्रारूप समिति के सबसे प्रमुख सदस्य थे, और उसके बाद उन्होंने भारत सरकार के विधि मंत्री के रूप में काम किया। इस लिहाज़ से उन्होंने नागरिकता और अधिकारों की नई संकल्पनाओं को आकार देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। इस भूमिका में उन्होंने अपनी दृष्टिकोण की तरफ़दारी नहीं की, बल्कि उन्होंने लोगों की सामूहिक आवाज़ को अभिव्यक्त किया। लेकिन मार्च 1947 में संविधान सभा में दिए ज्ञापन में उन्होंने अल्पसंख्यक अधिकारों के बारे में अपने विचारों को स्पष्ट रूप से सामने रखा। पार्थ चटर्जी ने आंबेडकर की वैचारिक यात्रा और विशेष रूप से मार्च 1947 के ज्ञापन का विश्लेषण करते हुए इस बात पर ज़ोर दिया है कि उनके लेखन में अल्पसंख्यकों के सामान्य और विशिष्ट सिद्धांत सामने आते हैं। अल्पसंख्यक अधिकारों के सामान्य सिद्धांत में निम्नलिखित पहलुओं को सम्मिलित किया जा सकता है :

बहुत से विद्वान यह मानते हैं कि आंबेडकर ने अपने विचारों में इस्लाम और हिंदू धर्म — दोनों की कमियों को रेखांकित किया था, इसलिए हिंदू धर्म की उनकी आलोचना को भुलाकर सिर्फ़ इस्लाम की उनकी आलोचना को सामने रखना आंबेडकर के विचारों को आंशिक और मनमाने रूप से प्रस्तुत करने की तरह है।

1. एक अल्पसंख्यक समूह जिसने एक राष्ट्र की चेतना हासिल कर ली है, और वह बहुमत

---

[44] पवन दीक्षित (2019); उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ ने भी कई सभाओं में यह कहा कि आंबेडकर दलित और मुस्लिम एकता के ख़िलाफ़ थे. देखें, 'दलित-मुस्लिम एकता के सख़्त विरोधी थे आंबेडकर : सीएम योगी', *अमर उजाला*, 19 अप्रैल, 2019.

[45] इस प्रकार के लेखों के कुछ उदाहरणों के लिए देखिए : अनुपम कुमार सिंह (2019); अभिषेक बनर्जी (2018).

[46] जिया उस्सलाम (2016).

के समुदाय के साथ साझा नियति की भागीदारी करने से इंकार करता है, और जिसके पास एक राज्य का निर्माण करने की भू-क्षेत्रीय, प्रशासनिक और वित्तीय व्यवहार्यता है, उसे अपने संवैधानिक राज्य के स्वरूप को तय करने का अधिकार है।

2. संविधान को अपने सभी नागरिकों को नागरिक अधिकारों की गारंटी देनी चाहिए, सभी वयस्कों को वोट देने और धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार होना चाहिए। साथ ही, भेदभाव, अनैच्छिक दासता और नागरिक अक्षमताओं पर प्रतिबंध लगना चाहिए। राज्य के पास यह शक्ति होनी चाहिए कि वह सभी नागरिकों के समान अधिकारों को बाधित करने वाली नागरिक अक्षमताओं को हटाने के लिए संपत्ति या धर्म की संस्था में हस्तक्षेप करे।

3. जो अल्पसंख्यक समुदाय बहुसंख्यक समुदाय के साथ एक ही संवैधानिक व्यवस्था में रहने की सहमति देता है, उसे बहुमत के भेदभाव से क़ानूनी सुरक्षा की गारंटी दी जानी चाहिए।

4. इसके अतिरिक्त, ग़रीब और दुर्बल अल्पसंख्यक समुदाय को इस तरह विशेष राजनीतिक प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए, जिससे वह विधायी बहुमत के फ़ैसले को प्रभावित करने में समर्थ हो पाएँ। इस तरह के प्रतिनिधित्व का विशेष स्वरूप, मसलन विधायिका में सीटों के आरक्षण या पृथक निर्वाचक मंडल के बारे में अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा फ़ैसला किया जाना चाहिए, न कि इसे बहुमत द्वारा थोपा जाना चाहिए।[47]

पार्थ चटर्जी आंबेडकर के अल्पसंख्यक अधिकारों के सामान्य सिद्धांत से ही विशिष्ट सिद्धांत के प्रस्तावों को विकसित करते हैं :

1. अल्पसंख्यकों के सुरक्षा के विशिष्ट संवैधानिक क़ानूनी रूप या सरकार के अंगों में उनके प्रतिनिधित्व में सत्ता के संघीय वितरण, विधायी बहुमत की शक्तियाँ, विशेष प्रतिनिधित्व की प्रक्रिया और मात्रा जैसे प्रश्न सम्मिलित हैं। ये ऐसे मसले हैं जो अल्पसंख्यकों की असमर्थता/दुर्बलता की विशेष परिस्थितियों पर निर्भर होते हैं।

2. इस तरह के क़ानूनी संवैधानिक रूपों का आकस्मिक चयन प्राथमिक रूप से ख़ुद अल्पसंख्यक समूह पर छोड़ देना चाहिए, और इसे बहुमत द्वारा थोपा नहीं जाना चाहिए।[48]

3. निश्चित रूप से, अल्पसंख्यक अधिकारों के बारे में आम्बडेकर के विचार काफ़ी ठोस हैं, और वे मौजूदा स्थिति में मुस्लिमों और अन्य अल्पसंख्यक समूहों के प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। *थॉट्स ऑन पाकिस्तान* को एक विशेष संदर्भ में लिखी गई पुस्तक के रूप में ही देखा जाना चाहिए, हालाँकि आरएसएस इस पुस्तक को मुस्लिमों के नकारात्मक चित्रण के लिए लगातार इस्तेमाल करता रहा है।

इसके अलावा, संघ परिवार की यह कोशिश रही है कि वह अस्पृश्यता का ठीकरा मुस्लिम शासकों के मत्थे मढ़ दे और हिंदू धर्म की संस्कृति और इतिहास को इसके बोझ से मुक्त कर दे। इस

[47] पार्थ चटर्जी (2018) : 127-28.

[48] वही : 131. ; पार्थ चटर्जी इस बात पर ज़ोर देते हैं कि यदि आंबेडकर के सिद्धांत का अनुसरण करते हुए मुस्लिम अल्पसंख्यक के लिए विधायिकाओं में आरक्षण का प्रावधान किया जाता, तो यह भाजपा के लिए बाधा का काम करता, जो कि छह दशकों के बाद देश में एक स्थायी सांप्रदायिक बहुमत के निर्माण का प्रयास कर रही है. देखें, वहीं : 133.

संदर्भ में डॉ. बिजय सोनकर शास्त्री जैसे संघ से जुड़े दलित विद्वानों ने अपने लेखन के माध्यम से एक वैकल्पिक इतिहास पेश करने की कोशिश की है। शास्त्री ने अपनी कई पुस्तकों के माध्यम से इस बात पर ज़ोर दिया है कि मुस्लिम शासन के आगमन के बाद ही भारत में अस्पृश्यता का उदय हुआ। उनके अनुसार, जिन ब्राह्मणों और क्षत्रिय लोगों ने इस्लाम धर्म को अपनाने से इंकार कर दिया, उन्हें मल ढोने और चमड़े के काम में लगा दिया गया।[49] असल में, समय-समय पर संघ परिवार से जुड़े कई पदाधिकारी भी इस थीसिस पर ज़ोर देते रहे हैं। कांचा इलैया और मोहसिना अंजुम अंसारी ने भी बिजय सोनकर शास्त्री के दावों को पूरी तरह नकार दिया है। उन्होंने प्राचीन हिंदू धर्मग्रंथों के हवाले से यह साबित करने का प्रयास किया है कि भारत में इस्लाम के एक धर्म के रूप में सामने आने से पहले से अस्पृश्यता थी क्योंकि इन धर्मग्रंथों की रचना इस्लाम के एक धर्म के रूप में उदय होने के पहले की गई थी। इस संदर्भ में वे *मनुस्मृति*, *ऋग्वेद* और *गीता* का हवाला देते हुए यह इस बात पर ज़ोर देते हैं कि ये सभी धर्मग्रंथ अस्पृश्यता के सुपरिभाषित व्यवहार को मान्यता देते हैं।[50] वे अल-बेरूनी अबू रिहान मोहम्मद बिन अहमद, जो कि अल-बेरूनी के नाम से प्रसिद्ध हैं, की प्रसिद्ध पुस्तक *तारीख़-अल-हिंद* के अंग्रेज़ी अनुवाद *अल-बेरूनीज इंडिया* में दिए गए विवरणों के माध्यम से यह स्थापित करने का प्रयास करते हैं कि भारत में व्यवस्थित रूप से मुस्लिम शासन की स्थापना होने से पहले भी अस्पृश्यता बड़े पैमाने पर मौजूद थी। अल-बेरूनी 11वीं सदी में मोहम्मद गजनवी के साथ भारत आए थे और वे काफ़ी समय तक यहाँ रहे थे। उन्होंने अपने वर्णन में भारत में अस्पृश्यता की अस्तित्व और सामाजिक स्तर पर इसके व्यवहार को रेखांकित किया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों की चर्चा करने के बाद वे अछूतों के बारे में बताते हैं। उनके अनुसार, जिन लोगों को हाड़ी, डोम, चंडाल और बधातु के रूप में जाता। वे किसी भी जाति के सदस्य नहीं होते हैं। वे गाँवों की सफ़ाई और अन्य गंदा माने जाने वाले कामों में लगे रहते हैं। इन्हें एक वर्ग के रूप में माना जाता है, और इन्हें इनके पेशे के अनुसार अलग किया जाता है।[51] इसीलिए कांचा इलैया और मोहसिना अंजुम अंसारी ने सोनकर शास्त्री और आरएसएस के अन्य विद्वानों के इस दावे को पूरी तरह नकारा है, जिसमें वे अस्पृश्यता को मध्ययुगीन मुस्लिम शासन की देन मानते हैं। वे इसे पूरी तरह से झूठ और ऐतिहासिक मिथक की संज्ञा देते हैं।[52] इसी तरह, ख़ुद आंबेडकर ने भी इस बात पर बल दिया कि अस्पृश्यता 400 ईस्वी के आस-

[49] विकास पाठक (2015); डॉ. बिजय सोनकर शास्त्री के इन विचारों के लिए देखें, डॉ. बिजय सोनकर शास्त्री (2014); (2016); शास्त्री की इन पुस्तकों का विमोचन आरएसएस के सरसंघचालक मोहन भागवत ने किया. आरएसएस में पदाधिकारियों के पदसोपान में नंबर दो की हैसियत रखने वाले भैयाजी जोशी के अनुसार, हिंदू धर्मग्रंथों में शूद्र कभी भी अस्पृश्य नहीं माने जाते थे. मध्य युग में 'इस्लाम के अत्याचारों के कारण ही अछूतों, दलितों और भारतीय मुस्लिमों का उदय हुआ. वे इस बात पर भी ज़ोर देते हैं कि चंद्रवंशीय क्षत्रियों के हिंदू स्वाभिमान को खंडित करने के लिए अरब के विदेशी आक्रांताओं, मुस्लिम शासकों और गोमांस खाने वालों ने उन्हें गायों को मारने, उनकी चमड़ी निकालने और उनके शवों को ख़ाली स्थानों पर फेंकने का काम दे दिया. इस तरह, विदेशी शासकों ने गर्वशाली हिंदू क़ैदियों को सज़ा देने के लिए उनसे ऐसे काम करवाए, और चर्म-कर्मा जाति का निर्माण किया. देखें, डी. के. सिंह (2014).

[50] कांचा इलैया और मोहसिना अंजुम अंसारी (2015).

[51] कांचा इलैया और मोहसिना अंजुम अंसारी (2015).

[52] वही.

पास आरंभ हुआ जब गोमांस के सेवन पर प्रतिबंध लगा दिया गया, और जो लोग गोमांस खाते रहें, उन्हें अस्पृश्य घोषित कर दिया गया। स्पष्टत: हिंदुओं ने ही अस्पृश्यता को जन्म दिया।[53]

यह भी सच है कि आरएसएस ने दलितों के प्रति अपने नज़रिए में लगातार परिवर्तन करते हुए उनके बीच अपनी पैठ बढ़ाने का प्रयत्न किया है। मसलन, 1970 के दशक में इसने जाति व्यवस्था पर अपने विचारों में परिवर्तन करते हुए यह कहना शुरू किया उसका जाति में विश्वास नहीं है। 1980 के दशक के आरंभ में फुले और आंबेडकर के नाम को दैनिक प्रात:कालीन प्रार्थना में सम्मिलित किया गया। आंबेडकर पर अपनी दावेदारी मजबूत करने के लिए 1983 में आरएसएस द्वारा सामाजिक समरसता मंच की स्थापना की गई। हेडगेवार और आंबेडकर के बीच संश्लेषण या समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया गया। फिर, संघ परिवार के कुछ संगठनों ने ख़ुद को आंबेडकर और उनके अनुयायियों से जोड़ने के लिए 14 अप्रैल और 6 दिसंबर के दिन कार्यक्रम आयोजित करना शुरू कर दिया। गोपाल गुरु का मानना है कि आरएसएस आंबेडकर को अपनाकर अपनी छवि को मजबूत बनाना चाहती थी, लेकिन इसके साथ ही वह आंबेडकर के रैडिकल परिवर्तनकारी विरासत पर दावा नहीं करना चाहती थी। इसीलिए उन्होंने इसे आंबेडकर का 'हिंदूकरण' करने की रणनीति की संज्ञा दी।[54] हाल के दौर में, नरेंद्र मोदी सरकार आंबेडकर के लिए दिल्ली में स्मारक का निर्माण करवाया। इसने यह सुनिश्चित किया कि वे लंदन में जिस घर में रहें, उसे भी एक स्मारक बनाया जाए।[55] इसके अलावा, संघ ने भी लगातार यह प्रयास किया है कि अगर उसके किसी काम से दलित नाराज़ न हों।[56]

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि हिंदुत्व की राजनीति ने दलितों को अपने साथ जोड़ने में काफ़ी हद तक कामयाबी हासिल की है। उसकी इस कामयाबी में निम्नलिखित कारकों की भूमिका स्पष्ट रही है : पहला, उन्होंने मुस्लिमों को दलितों सहित हिंदुओं के एक साझे शत्रु के रूप में प्रस्तुत और स्थापित करने पर ज़ोर दिया है। दूसरा, मुस्लिमों को शत्रु के रूप में प्रस्तुत करने के लिए आरएसएस ने आंबेडकर के लेखन में मुस्लिमों के वर्णन को इस रूप में इस्तेमाल किया है, मानो आंबेडकर के विचार भी मुस्लिमों को भरोसे के लायक़ न मानने के आरएसएस के विचारों के अनुरूप थे। हालाँकि आंबेडकर ने मुस्लिमों और हिंदुओं — दोनों की आलोचना की, लेकिन इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि मुस्लिमों के बारे में उनका वर्णन कुछ हद तक दक्षिणपंथी हिंदुत्ववादी ताक़तों द्वारा फैलाए गए रूढ़िबद्ध या स्टीरियोटाइप सोच के अनुरूप लगता है, और इसलिए उनके द्वारा आंबेडकर के इस लेखन का काफ़ी उपयोग (दुरुपयोग) भी किया गया है। तीसरा, इसके लिए सिर्फ़ राजनीतिक बयानबाज़ी के

---

[53] देखें, भीम राव आंबेडकर (2015); आंबेडकर के इस आलेख का शीर्षक है : 'अस्पृश्यता, मृत गाय और ब्राह्मणवाद'. यह आलेख इस पुस्तक में भी संकलित है. यह आंबेडकर के 1948 में प्रकाशित रचना *द अनटचेबल्स : हू वेयर दे ऐंड व्हाय दे बिकेम अनटचेबल्स* के दसवें से चौदहवें अध्यायों के मुख्य अंशों से संकलित की गई है. ग़ौरतलब है कि यह रचना महाराष्ट्र सरकार द्वारा 1990 में प्रकाशित *डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर : राइटिंग्स ऐंड स्पीचेज़* के सातवें खंड में पुनर्मुद्रित की गई थी.

[54] गोपाल गुरु (1991) : 339-41.

[55] आनंद तेलतुंबड़े ने इसे आंबेडकर के 'स्मारक बनाने, लेकिन उनके मिशन को दफ़नाने' की संज्ञा दी. देखें, आनंद तेलतुंबड़े (2015).

[56] मसलन देखें, वॉल्टर ऐंडर्सन और श्रीधर डी. दामले (2018) : 89-90.

बजाय ठोस रूप से इतिहास की 'पुनर्व्याख्या' करने पर ज़ोर दिया गया है, और ऐसा करते हुए अस्पृश्यता के लिए मुस्लिम शासकों को ज़िम्मेदार ठहराने का हर संभव प्रयत्न किया गया है। चौथा, इसके अलावा, आरएसएस ने अपने भीतर भी काफ़ी बदलाव किया है, इसने आंबेडकर को सम्मान देकर, दलितों को पद देकर और *मनुस्मृति* जैसे ग्रंथों को त्यागकर दलितों में अपने पैठ बढ़ाई है। इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि पिछले दो दशकों में मुस्लिमों के ख़िलाफ़ हुए दंगों में दलितों ने काफ़ी बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया है। इस संदर्भ में विशेष रूप से गुजरात दंगों का उल्लेख किया जा सकता है।[57] ऐसे में यह सवाल लाज़िमी है कि क्या दलितों और मुस्लिमों के सहयोग की कोई संभावना मौजूद है? क्या कोई ऐसा साझा आधार तैयार हो सकता है जो दलितों और मुस्लिमों को एक साथ जुड़कर राजनीतिक और सामाजिक स्तर पर काम करने के लिए प्रेरित करें।

दलित और मुस्लिम : राजनीतिक सहयोग का रास्ता और दुश्वारियाँ

यह माना जाता है कि सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्तर पर दलित और मुस्लिम भारत के सबसे वंचित तबक़ों में सम्मिलित हैं। हाल के दशकों में हिंदुत्ववादी राजनीति के उभार के बाद मुस्लिमों का हाशियाकरण बढ़ा है; दलितों का एक तबक़ा ज़रूर भाजपा के निकट गया है लेकिन एक बड़ा भाग अभी भी भाजपा से दूर है। हालाँकि भाजपा के नज़दीक या दूर जाने से दलितों के ख़िलाफ़ होने वाले उत्पीड़न की घटनाओं पर कोई गहरा प्रभाव नहीं पड़ा है। अर्थात अभी भी दलित विविध स्तरों पर वंचना, अस्पृश्यता और शोषण सहने के लिए मजबूर हैं। मुस्लिमों में दलित मुस्लिमों की स्थिति ज़्यादा ख़राब है, क्योंकि उन्हें अपने समुदाय के भीतर भी बहिष्करण, और कई मामलों में अस्पृश्यता का सामना करना पड़ता है, लेकिन कुल-मिलाकर एक धार्मिक समूह के रूप में भी मुस्लिमों की स्थिति बहुत बेहतर नहीं मानी जा सकती है।[58] ऐसे में, सिर्फ़ राजनीतिक स्तर पर ही नहीं, बल्कि जीवन के अन्य आयामों में भी दलित और संपूर्ण मुस्लिम समुदाय के बीच सहयोग का प्रश्न काफ़ी प्रासंगिक हो जाता है। आख़िर इस तरह के सहयोग की क्या संभावनाएँ हैं, और इसके रास्ते में किस तरह की मुश्किलें हैं? क्या हाल के समय में इस तरह के सहयोग या गठजोड़ निर्माण की प्रक्रिया ने उन सभी मुद्दों को गंभीरता से लिया है, जो इन दो समुदायों के जीवन को प्रभावित करती है?

दलित दृष्टिकोण से विचार करने वाले कुछ प्रमुख विद्वानों में से एक कांचा इलैया ने इस संदर्भ में मुस्लिम बुद्धिजीवी वर्ग के भूमिका का परीक्षण किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि कांचा इलैया दलित, आदिवासी और अन्य पिछड़ी जातियों के मुस्लिमों से संबंध के बारे में पूरी ज़िम्मेदारी मुस्लिम बुद्धिजीवी वर्ग पर डाल देते हैं। उनके अनुसार, मुस्लिम बुद्धिजीवी वर्ग को जाति और अस्पृश्यता के मुद्दे पर उदासीन रहने के लिए ज़िम्मेदार ठहराया जा सकता है। वे मानते हैं कि

[57] आनंद तेलतुंबड़े और कांचा इलैया जैसे विद्वानों ने इस तथ्य को स्वीकार किया कि 2002 के गुजरात दंगों में दलितों ने भी हिंदुत्ववादी शक्तियों की ओर से बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया. देखें, आनंद तेलतुंबड़े (2005); और कांचा इलैया (2002).

[58] मुस्लिमों की स्थिति के बारे में विश्लेषण के लिए भारत सरकार द्वारा में गठित रजिंदर सच्चर समिति की रिपोर्ट देखी जा सकती है. इसका गठन मार्च 2005 में किया गया और इसने नवंबर 2006 में अपनी रपट प्रस्तुत की. देखें, गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया (2006).

ऐतिहासिक रूप से अंग्रेज़ों के आगमन से पहले मुस्लिम शासकों और विद्वानों ने जाति के प्रश्न को समझने का कोई प्रयास नहीं किया, और यह अचरज की बात है कि उस समय या बाद में उन्होंने दलित-बहुजनों के लिए कोई सामाजिक या शैक्षणिक कार्य नहीं किया। कांचा इलैया यह रेखांकित करते हैं कि बाद के दौर में भी मुस्लिम विद्वानों ने मुख्य रूप से शासक वर्ग के सामंती विचारधारा के अनुसार काम किया है, और कुछ अपवादों को छोड़कर (मसलन, इतिहासकार इरफ़ान हबीब) उनके द्वारा जातिगत अत्याचारों को गंभीरता से नहीं लिया गया है। उनके अनुसार, इस्लाम में न तो कोई खोजी परंपरा है, और न ही सामाजिक सेवा की कोई ऐसी परंपरा है, जिसमें इस्लाम अपनाने वाले लोगों के साथ सामाजिक स्तर पर मेल-जोल बढ़ाया जाए। वे इनकी तुलना ईसाई मिशनरियों के कामों से करते हैं, और वे यह कहते हैं कि मुस्लिम बुद्धिजीवियों को उनसे यह सीखना चाहिए कि वे कैसे दलित, आदिवासी और ओबीसी के साथ एक भरोसे का संबंध बना सकते हैं।[59]

इसी तरह, गेल ऑमवेट ने यह विचार व्यक्त किया है कि आंबेडकर और अन्य जाति-विरोधी सुधारकों ने ब्राह्मणवाद और जाति के साझा विरोध के रूप में एकता का एक आधार प्रस्तुत किया क्योंकि ब्राह्मणवाद से दलित और मुस्लिम दोनों ही पीड़ित थे, लेकिन उदारवादी मुस्लिमों ने इसकी उपेक्षा की।[60] ऑमवेट के अनुसार, भविष्य के लिए एक ठोस दलित और मुस्लिम गठजोड़ से ही एक समृद्ध, समानतावादी और जाति तथा पितृसत्ता से मुक्त भारत का निर्माण हो सकता है। उनके अनुसार, मुस्लिम इसमें तीन तरह से योगदान दे सकते हैं : पहला, एक ऐसी मुस्लिम संस्कृति का निर्माण करके, जो अतीत के कलात्मक और सांस्कृतिक उपलब्धियों को फिर से हासिल करे, आधुनिकतावाद का समर्थन करे। एक प्रामाणिक रूप से बहुलवादी समाज के भीतर अपनी पहचान क़ायम रखने की दिशा में काम करने वाला इस्लाम भारतीय राष्ट्रीय समुदाय के आधारों के पुनर्निर्माण में एक शक्तिशाली ताक़त की भूमिका निभा सकता है। दूसरा, मुस्लिमों को यह स्वीकार करने की आवश्यकता है कि भारतीय समाज के भीतर प्रभुत्वशाली बन चुके ब्राह्मणवाद से संघर्ष करना एक विशेष कार्य है। भारतीय संस्कृति को ब्राह्मणवाद के जकड़न से मुक्त करने से ही एक प्रामाणिक राष्ट्रीय विकास का आधार तैयार होगा। 'हिंदू-मुस्लिम एकता' की रूपरेखा के तौर पर गांधीवाद को स्वीकार करने से यह काम नहीं होगा। इसे सिर्फ़ आंबेडकर , फुले, पेरियार, लयोथी थास — और वर्तमान समय में मायावती और कांशी राम के माध्यम से आने वाली दलित आवाज़ को सुनकर ही किया जा सकता है। तीसरा, चूँकि दलित एक नई आस्था की तलाश में है, इसलिए इस्लाम को इस प्रक्रिया में भागीदारी करनी चाहिए। एक स्वायत्त समुदाय के रूप में दलितों का सम्मान किया जाना चाहिए।[61]

उपरोक्त दोनों विचारकों का दलित चिंतन में काफ़ी सम्मानजनक स्थान है, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि दलित और मुस्लिम एकता के संदर्भ में ये सारी ज़िम्मेदारी मुस्लिमों पर डाल देते हैं। इस संदर्भ में कुछ प्रमुख बिंदुओं पर ध्यान देने की ज़रूरत है : पहला, कांचा इलैया गुजरात दंगों में दलितों, आदिवासियों और ओबीसी की भागीदारी का ठीकरा मुस्लिम बुद्धिजीवी वर्ग पर डाल देते हैं, किंतु

[59] कांचा इलैया (2002).

[60] गेल ऑमवेट (2005).

[61] वही.

वे दलित बुद्धिजीवी वर्ग और उसकी नाकामी की बारे में पूरी तरह ख़ामोश रहते हैं। उनकी पूरी की पूरी शिकायत मुस्लिम बुद्धिजीवी वर्ग से है जिसने दलितों के लिए उस तरह काम करने की कोशिश नहीं की, जैसे कि ईसाई मिशनरियों ने की। दूसरा, दलित और मुस्लिम एकता के संदर्भ में गेल ऑमवेट भी पूरी ज़िम्मेदारी मुस्लिमों पर ही डाल देती हैं, और परोक्ष रूप से उन्हें आधुनिकतावाद को अपनाने की सलाह देती हैं। तीसरा, यह भी ग़ौरतलब है कि जब ये दोनों लेख लिखे गए, उसके पहले ही गुजरात दंगों के बाद मायावती भाजपा के साथ मिलकर तीसरी बार सरकार बना चुकी थीं। लेकिन दोनों में से कोई लेखक मायावती के इस क़दम की आलोचना या समीक्षा नहीं करता। ऑमवेट दो क़दम आगे जाकर मुस्लिमों से कहती हैं कि वे 'दलित आवाज़ों' को सुनें, और इसमें वे मायावती और कांशीराम की आवाज़ों को प्रमुख स्थान देती हैं। आख़िर गुजरात दंगे में सक्रिय भागीदारी करने वाले संगठन अर्थात आरएसएस-भाजपा से सहयोग करने वाली मायावती की आवाज़ सुनकर मुस्लिम कौन सी राहत पा सकते हैं? ऑमवेट और इलैया — दोनों ही दलित नेतृत्व को आलोचना की कसौटी पर कसने से बचते हैं। चौथा, मुस्लिमों के भीतर दलित जातियों के अस्तित्व और उन्हें अनुसूचित जाति की श्रेणी में शामिल करने और इसे दलित और मुस्लिम एकता का आधार बनाने के संदर्भ में दोनों विद्वान पूरी तरह से ख़ामोश हैं।
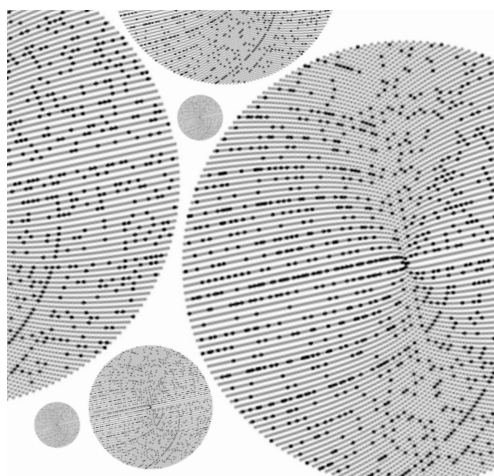
कांचा इलैया दलित, आदिवासी और अन्य पिछड़ी जातियों के मुस्लिमों से संबंध के बारे में पूरी ज़िम्मेदारी मुस्लिम बुद्धिजीवी वर्ग पर डाल देते हैं। उनके अनुसार, मुस्लिम बुद्धिजीवी वर्ग को जाति और अस्पृश्यता के मुद्दे पर उदासीन रहने के लिए ज़िम्मेदार ठहराया जा सकता है।

असल में, सिर्फ़ दलित मुद्दों पर लिखने वाले विद्वानों ने ही दलित और मुस्लिम एकता के विभिन्न आयामों की निष्पक्ष विश्लेषण की अवहेलना नहीं की है, बल्कि राजनीतिक स्तर पर भी मुख्य रूप से यही प्रवृत्ति रही है। दलित नेताओं/बुद्धिजीवियों ने मुस्लिमों को, और मुस्लिमों ने दलितों को एक ऐसे बड़े व्यापक मतदाता समूह के रूप में देखा है, जिसके माध्यम से वे चुनावी राजनीति में अपना लक्ष्य हासिल कर सकते हैं। मिसाल के तौर पर, नवंबर 2016 में जमात उलेमा ए हिंद ने अपने अजमेर सम्मेलन में दलित और मुस्लिम एकता का आह्वान किया। एक टीकाकार अरशद आलम ने इस प्रकार के पहल की प्रशंसा की क्योंकि दलित और मुस्लिम — दोनों ही हाशिए पर पड़े समूह हैं, और दक्षिणपंथी दलों के दमन का शिकार हो रहे हैं। हालाँकि वे इस बात पर भी ज़ोर देते हैं कि मुस्लिमों को अपने समुदाय के भीतर मौजूद जातिगत भेदभावों की भी शिनाख़्त करनी

होगी। ऐसा होने पर ही वास्तविक अर्थों में दलित और मुस्लिम एकता स्थापित हो सकती है।[62]

असल में, हाल के दशकों में दलित और मुस्लिम गठजोड़ को दक्षिणपंथी राजनीति के एक आकर्षक और प्रगतिशील विकल्प के रूप में देखा जाने लगा है। 1990 के दशक के पहले उत्तर प्रदेश में ये दोनों समूह मोटे तौर पर कॉन्ग्रेस के साथ थे। बाद मे कॉन्ग्रेस कमज़ोर होने और बाबरी मस्जिद विध्वंस के कारण मुस्लिम कॉन्ग्रेस से दूर हुए और बसपा के उभार ने दलितों को कॉन्ग्रेस से दूर किया। 1993 के विधानसभा चुनावों में सपा-बसपा गठबंधन ने भाजपा को करारी मात दी। सामाजिक स्तर पर, इसे दलित, मुस्लिम और पिछड़ी जातियों (मुख्यत: यादव और कुछ अन्य जातियों) के गठजोड़ के रूप में देखा गया। बाद के समय में बसपा और इसकी नेता मायावती ने भाजपा के समर्थन से तीन बार उत्तर प्रदेश में सरकार बनाई। 2002 के गुजरात दंगों के बाद भी उन्होंने न सिर्फ़ भाजपा से अपना राजनीतिक संबंध बनाया, बल्कि इन दंगों के बाद हुए चुनावों में उन्होंने गुजरात जाकर नरेंद्र मोदी का प्रचार भी किया। यद्यपि भाजपा की सांप्रदायिक राजनीति को हराने के नाम पर उन्हें चुनावों में मुस्लिम मतदाताओं के मत मिले, किंतु बसपा के लगातार बदलते रुख़ के कारण दलित और मुस्लिमों के बीच में सामाजिक स्तर पर एक सहज संबंध नहीं बन पाया। अर्थात राजनीतिक गठजोड़ सामाजिक गठजोड़ में तब्दील नहीं हो पाया। इसका एक बड़ा कारण यह भी है कि दलित नेताओं ने भी अन्य दलों और नेताओं की तरह मुस्लिमों को एक इकाई के रूप में देखा, और उन्होंने मुस्लिमों के बीच मौजूद भिन्नता या असमानता के सवालों को उठाने की जहमत नहीं उठाई।

मायावती की तरह ही कई अन्य बड़े किंतु क्षेत्रीय दलित नेताओं ने भी समय-समय पर भाजपा से गठजोड़ किया। रामविलास पासवान भी एक बड़े दलित नेता रहे हैं। 2002 में इन्होंने राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन को गुजरात दंगों को हवाला देते हुए छोड़ दिया था। बाद में, 2014 में उन्होंने भाजपा के साथ फिर से गठजोड़ कर लिया। रामदास अठावले एक अन्य नेता हैं जिन्होंने सुविधा के अनुसार पाला बदला है। असल में, दलित नेताओं के रुख़ में इस तरह बदलाव होने के कारण राजनीतिक स्तर पर दलित और मुस्लिम गठजोड़ का निर्माण नहीं हो पाया है।[63] हाल के दौर में, असदुद्दीन ओवैसी की पार्टी ऑल इंडिया मजलिस-ए-इत्तेहादुल मुस्लमीन ने इस बात की लगातार तरफ़दारी की है कि दलितों और मुस्लिमों के बीच में राजनीतिक गठजोड़ बनना चाहिए। मसलन, 6 अप्रैल, 2018 को जमात-ए-उलमा हिंद (मौलाना अरशद मदनी ग्रुप) द्वारा हैदराबाद में आयोजित सम्मेलन को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा कि 'हर 15 मिनट में दलितों का उत्पीड़न होता है, उन्हें पीटा जाता है। उनके ख़िलाफ़ होने वाले अपराध में 66 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। हमें दलित भाइयों के साथ मिलकर काम करना होगा। बहुत वर्षों से उनका उत्पीड़न हो रहा है। आज दलित मुस्लिमों की ओर कुछ उम्मीदों से देख रहे हैं। क्या ये दोनों उत्पीड़ित समुदाय एक साथ आएँगे? मुझे भरोसा है कि वे आ सकते हैं।[64]

---

[62] अरशद आलम (2016).

[63] महाराष्ट्र में दलित आंदोलन और दलितों की राजनीति करने वाले दलों और आरएसएस भाजपा से उनके संबंधों को समझने के लिए देखें, सुहाश पलशीकर (2005).

[64] 'ओवैसी पिचेज़ फ़ॉर दलित मुस्लिम यूनिटी', *द हिंदू*, 7 अप्रैल, 2018.

बहरहाल, दलित और मुस्लिम गठजोड़ की चुनौतियों और संभावनाओं के बारे में कुछ बिंदुओं को रेखांकित किया जा सकता है : पहला, अमूमन इस तरह का गठजोड़ नेताओं, पार्टियों या कार्यकर्ताओं के बीच गहरे सैद्धांतिक समझ और दीर्घकालिक योजना का नतीजा नहीं होती हैं, बल्कि तात्कालिक चुनावी हितों से प्रभावित होती हैं। इसके कारण, ऐसे गठजोड़ हर चुनाव में सामने आते हैं और फिर कुछ समय बाद बिखर जाते हैं। अधिकांश प्रमुख दलित नेता कभी-न-कभी भाजपा की मदद से सत्ता का स्वाद चख चुके हैं, जो मुस्लिमों के बीच उनकी विश्वसनीयता को कम करता है। दूसरा, सामाजिक स्तर पर दलित या मुस्लिम बुद्धिजीवियों ने अपने-अपने समुदाय के लोगों के बीच समरसता को बढ़ाने की कोशिश नहीं की है। तीसरा, इस आलेख के पिछले भाग में मैंने यह विश्लेषण किया है कि आरएसएस और भाजपा द्वारा दलितों को अपनी ओर खींचने के प्रयास में मुस्लिमों को एक शत्रु के रूप में चित्रित करने का प्रयास किया गया है। इसके लिए वे कई बार आंबेडकर के विचारों को भी हथियार के रूप में इस्तेमाल करते हैं। दलित बुद्धिजीवियों या दलों ने इससे निपटने के लिए कोई व्यवस्थित या सक्रिय प्रयास नहीं किया है।

हालाँकि इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता है कि दलित और मुस्लिम समुदायों के बीच सहयोग की संभावनाएँ भी काफ़ी हैं। आंबेडकर जन संघर्षों के लिए एक मज़बूत प्रतीक के रूप में उभरे हैं। दिसंबर 2019 में नागरिकता संशोधन क़ानून के ख़िलाफ़ हुए आंदोलनों में मुस्लिम महिलाओं द्वारा शाहीन ब़ाग में किए गए लंबे प्रदर्शनों में गांधी के साथ-साथ आंबेडकर की तस्वीरें भी प्रमुखता से लगी होती थीं। इसके अलावा, बहुत से आंबेडकरवादी विद्वान और कार्यकर्ता मुस्लिमों की उत्पीड़न के मुद्दे पर और मुस्लिम एक्टिविस्ट दलितों के साथ होने वाले अत्याचारों का मुखरता से विरोध करते रहे हैं। हालाँकि साझापन और सहयोग के इस आधार को विस्तृत करने के लिए काफ़ी ज़्यादा काम करने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

दलित और मुस्लिम समुदायों आपसी संबंधों की कई जटिल परतें हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि इन व्यापक समुदायों के भीतर कई स्तरों पर असमानताएँ और आंतरिक भिन्नताएँ मौजूद हैं। इस संदर्भ में इस आलेख में विशेष रूप से मुस्लिम के भीतर अस्पृश्यता की मौजूदगी और दलित-मुस्लिम श्रेणी से जुड़े विभिन्न आयामों का विश्लेषण किया गया है। निश्चित रूप से, यह एक ऐसा आयाम है जिस पर कोई बड़ा मुस्लिम नेता या मुस्लिमों और दलितों की एकता की बात करने वाले नेता ज़्यादा ध्यान नहीं देते। अमूमन मुस्लिम नेता या विद्वान इसे अपने समुदाय की 'छवि' से जोड़कर देखते हैं, और दलित विद्वान या नेता इस प्रश्न को दूसरे समुदाय के आंतरिक मसलों में दख़लंदाज़ी मानते हुए इस पर बात नहीं करते। लेकिन दलित-मुस्लिमों की स्थिति ऐसी है कि उन्हें अनुसूचित जाति की श्रेणी में सम्मिलित करके राज्य की सकारात्मक कार्रवाई का लाभ दिया जाना चाहिए। इससे उनकी स्थिति में सुधार हो सकता है।

आरएसएस की राजनीति की सफलता और दलित तथा मुस्लिम नेताओं की अदूरदर्शिता के कारण भारत के राजनीतिक परिदृश्य में दो सबसे हाशियाकृत समूहों अर्थात दलितों और मुस्लिमों

के साथ जुड़कर अपने हितों की प्राप्ति के प्रयासों को मजबूती नहीं मिल सकी है। इतिहास की नवीन व्याख्याओं और मुस्लिमों के ख़िलाफ़ भ्रामक प्रचार तथा इसके लिए कई बार आंबेडकर के लेखन का इस्तेमाल करके आरएसएस ने दलितों के मन में मुस्लिमों के ख़िलाफ़ ज़हर भरने में कामयाबी पाई है। इसी कारण बहुत मुस्लिम विरोधी दंगों में दलितों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया है। बसपा में जाटव जाति के वर्चस्व ने भी भाजपा का काम आसान किया है। हालाँकि दलित और मुस्लिमों को साथ लाने का विचार काफ़ी आकर्षक है, और समय-समय पर कई राजनीतिज्ञ इसके लिए प्रयास भी करते रहते हैं, लेकिन इसके लिए दीर्घकालिक योजना बनाकर सामाजिक स्तर पर काम करने की आवश्यकता है। निश्चित रूप से, यदि गहरे समझ के साथ ये दो समुदाय (या इनका बड़ा हिस्सा) एक साथ आते हैं, तो इससे भारतीय राजनीति में आमूलचूल परिवर्तन हो सकता है।

संदर्भ

अनवर अली (2005), *मसावात की जंग* (स्ट्रगल फ़ॉर इक्विैलिटी), (अनु.) : मोहम्मद इमरान अली और जाकिया जौहर, इंडियन सोशल इंस्टीट्यूट, नई दिल्ली.

अनुपम कुमार सिंह (2019), 'वतन के बदले कुरान के प्रति वफ़ादार हैं मुस्लिम, वे कभी हिंदुओं को स्वजन नहीं मानेंगे : आंबेडकर', ऑप इंडिया, 21 अक्टूबर, वेब पता : https://hindi.opindia.com/opinion/social-issues/when-babasaheb-bhimrao-ambedkar-criticised-islam/] देखने की तारीख़ : 5 जुलाई, 2020.

अभिषेक बनर्जी (2018), '10 थिंग्स आंबेडकर सेड दैट इंडियन सेक्युलरिस्ट वुडंट बेयर टू हियर', ऑप इंडिया, 11 अप्रैल, वेब पता : https://www.opindia.com/2018/04/10-things-ambedkar-said-that-indian-secularists-wouldnt-bear-to-hear/देखने की तारीख़ : 5 जुलाई, 2020.

अमर उजाला (2019), 'दलित-मुस्लिम एकता के सख़्त विरोधी थे आंबेडकर : सीएम योगी', 10 अप्रैल, वेब पता : https://www.amarujala.com/lucknow/lok-sabha-election-2019-cm-yogi-comment-on-ambedkar, देखने की तारीख़ 5 जुलाई, 2020.

अरशद आलम (2016), 'इज़ अ दलित-मुस्लिम यूनिटी पॉसिबल?' *न्यू ऐज इस्लाम*, 26 नवंबर, वेब पता : https://www.newageislam.com/interfaith-dialogue/arshad-alam,-new-age-islam/is-a-dalit-muslim-unity-possible/d/109203] देखने की तारीख़, 30 जून, 2020.

अश्विनी देशपांडे (2013), *अफ़र्मेटिव ऐक्शन इन इंडिया*, ऑक्सफ़र्ड इंडिया शॉर्ट इंट्रोडक्शन, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली.

आनंद तेलतुंबड़े (2005), 'हिंदुत्व, दलित ऐंड द नियोलिबरल ऑर्डर', आनंद तेलतुंबड़े (सं.), *हिंदुत्व ऐंड दलित्स : पर्सपेक्टिव फ़ॉर अंडरस्टैंडिंग कम्युनल प्रैक्सिस,* सौम्या, कोलकाता.

आनंद तेलतुंबड़े (2015), 'इन दाई नेम, आंबेडकर', *इकनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली*, 50(40).

आफ़ताब आलम (2014), 'डिस्क्रिमिनेशन, मार्जिनलाइजेशन ऐंड डिमान्ड फ़ॉर रेकग्निशन : अ केस ऑफ़ दलित मुस्लिम्स इन इंडिया', आईसीएसएसआर, नई दिल्ली तथा गिरी इंस्टीट्यूट ऑफ़ डिवेलपमेंट स्टडीज, लखनऊ द्वारा आयोजित सोशल साइंस कॉन्ग्रेस में प्रस्तुत लेख.

इम्तियाज़ अहमद (सं.), (1973) *कास्ट ऐंड सोशल स्ट्रैटिफ़िकेशन अमंग मुस्लिम्स इन इंडिया*, मनोहर, नई दिल्ली.

इम्तियाज़ अहमद (2010), 'कैन देयर बी अ कैटेगरी कॉल्ड दलित मुस्लिम्स?', इम्तियाज़ अहमद और शशिभूषण उपाध्याय (सं.), *दलित असर्शन इन सोसायटी, लिटरेचर ऐंड हिस्ट्री*, ओरिएंट ब्लैकस्वान, हैदराबाद.

इरफ़ान अहमद (2003), 'अ डिफ़रेंट जिहाद : दलित मुस्लिम्स चैलेंज टू अशराफ़ हेजिमनी, *इकनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली*, खंड 38, अंक 46.

एम. एन. श्रीनिवास (1994), *कास्ट इन मॉडर्न इंडिया ऐंड अदर एसेज* (11वाँ पुनर्मुद्रण), मीडिया प्रोमोटर्स ऐंड पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, बॉम्बे (प्रथम प्रकाशन 1962)

कांचा इलैया (2002), 'दलित, ओबीसी ऐंड मुस्लिम रिलेशंस', *आउटलुक*, मई 29, वेब पता : https://www.outlookindia.com/website/story/dalit-obc-and-muslim-relations/215825, देखने की तारीख़ 12 अप्रैल, 2020.

कांचा इलैया और मोहसिना अंजुम अंसारी (2015), 'इज़ अनटचेबिलिटी इन इंडिया क्रिएटेड बाय इस्लाम', *मेनस्ट्रीम*, खंड LIII, अंक 43.

क्रिस्तॉफ़ जैफ़्रलो (2006), *डॉ. आंबेडकर ऐंड अनटचेबिलिटी : एनालाइजिंग ऐंड फ़ाइटिंग कास्ट*, परमानेंट ब्लैक, रानीखेत (पहला प्रकाशन : 2005).

गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया (2005), *सोशियो-इकनॉमिक ऐंड एजुकेशनल स्टेट्स ऑफ़ द मुस्लिम कम्युनिटी ऑफ़ इंडिया : अ रिपोर्ट, प्राइम मिनिस्टर हाई लेवल कमिटी*, कैबिनेट सेक्रेटेरियट, नई दिल्ली.

गेल ऑमवेट (2005), 'मुस्लिम-दलित रिलेशंस', *काउंटरकरेंट*.ओआरजी, 22 मई, वेब पता : https://www.countercurrents.org/dalit-omvedt220505.htm, देखने की तारीख : 29 जून, 2005.

गोपाल गुरु (1991), 'हिंदुआइज़ेशन ऑफ़ आंबेडकर इन महाराष्ट्र,' *इकनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली*, 16 फ़रवरी.

घनश्याम शाह, हर्ष मंदर, सुखदेव थोराट, सतीश देशपांडे और अमिता बाविस्कर (2006), *अनटचेबिलिटी इन रूरल इंडिया*, सेज, नई दिल्ली.

ग़ौस अंसारी (1960), *मुस्लिम कास्ट इन उत्तर प्रदेश : अ स्टडी इन कल्चरल कॉन्टैक्ट*, एथ्नोग्राफ़िक ऐंड फ़ोक कल्चर सोसायटी, लखनऊ.

जॉयल ली (2018), 'हू इज़ अ टू हलालख़ोर : जिनियोलॉजी ऐंड एथिक्स इन दलित मुस्लिम ओरल ट्रैडिशंस', *कंट्रीब्यूशन्स टू इंडियन सोशियोलॉजी*, अंक 52, खंड 1.

जिया उस्सलाम (2016), 'स्मॉदरिंग विद अफ़ेक्शन', *द हिंदू*, 25 मार्च, वेब पताः https://www.thehindu.com/opinion/columns/Ziya_Us_Salam/smothering-with-affection/article8396864.ece] देखने की तारीख़ : 2 जुलाई 2020.

डी. के. सिंह (2014), 'आरएसएस रिराइट्स हिस्ट्रीः दलित्स क्रिएटेड बाय इनवेडर्स', हिंदुस्तान टाइम्स, 22 सितंबर, वेब पता : https://www.hindustantimes.com/india/rss-rewrites-history-dalits-created-by-invaders/story-eyBt99Y2XbICUbadzCsSkM.html] देखने की तारीख़ : 2 जुलाई, 2020.

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर (1990), राइटिंग्स ऐंड स्पीचेज़ : पाकिस्तान ऑर द पार्टिशन ऑफ़ इंडिया, खंड 9, वसंत मून(सं.), गवर्नमेंट ऑफ़ महाराष्ट्र, बम्बई.

डॉ. बिजय सोनकर शास्त्री (2014), *हिंदू वाल्मीकि जाति : एक गौरवशाली इतिहास के पतन का सिंहावलोकन*, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली.

———————— (2016), *हिंदू चर्मकार जाति : एक स्वर्णिम गौरवशाली राजवंशीय इतिहास*, प्रभात

प्रकाशन, नई दिल्ली.

द *हिंदू* (2018),'ओवैसी पिचेज़ फ़ॉर दलित मुस्लिम यूनिटी', 7 अप्रैल, वेब पता : https://www.thehindu.com/news/cities/Hyderabad/owaisi-pitches-for-dalit-muslim-unity/article23468991.ece, देखने की तारीख़ : 2 जुलाई, 2020.

पवन दीक्षित (2019), 'कोटिंग' आंबेडकर, आरएसएस चीफ़ वार्न्स अगेन्स्ट दलित-मुस्लिम अलायंस इन पॉलिटिक्स', *हिंदुस्तान टाइम्स*, 1 फ़रवरी, वेब पता : https://www.hindustantimes.com/lucknow/quoting-ambedkar-rss-chief-warns-against-dalit-muslim-alliance-in-politics/story-HBMYoE3jUTpRBnE3s5pO9N.html देखने की तारीख़ : 2 जुलाई, 2020.

पार्थ चटर्जी (2018), 'आंबेडकर्स थियरी ऑफ़ माइनॉरिटी राइट्स', सूरज येंगडे और आनंद तेलतुंबड़े (सं.), *द रैडिकल इन आंबेडकर : क्रिटिकल रिफ़्लेक्शंस*, पेंगुइन, नई दिल्ली.

प्रशांत त्रिवेदी, श्रीनिवास गोली, फ़हिमुद्दीन और सुरिंदर कुमार (2016), 'डज़ अनटचेबिलिटी एग्ज़िस्ट अमंग मुस्लिम्स?' : एविडेंस फ़्रॉम उत्तर प्रदेश', *इकनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली*, 51(15).

फ़ैसल देवजी (2013), *मुस्लिम जियॉनः पाकिस्तान ऐज़ अ पॉलिटिकल आइडिया*, हार्वर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, केम्ब्रिज, मैसाचुसेट्स.

बी. आर. आंबेडकर (1941), *थॉट्स ऑन पाकिस्तान*, थैकर, बॉम्बे.

भीम राव आंबेडकर (2015), 'अस्पृश्यता, मृत गाय और ब्राह्मणवाद', (अनु.) : नरेश गोस्वामी, *प्रतिमान : समय समाज संस्कृति*, खंड 3, अंक 2 (प्रथम प्रकाशनः 1948).

मसूद आलम फ़लाही (2007), *हिंदुस्तान में जाँत पात और मुसलमान*, अल काज़ी, दिल्ली.

सतीश देशपांडे और गीतिका बापना (2008), *दलित्स इन द मुस्लिम ऐंड क्रिश्चियन कम्युनिटीजः अ स्टेट्स रिपोर्ट ऑन करेंट सोशल साइंटिफ़िक नॉलेज*, राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग के लिए तैयार की गई रिपोर्ट, गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया, नई दिल्ली.

सुदीप्त कविराज (1992), 'दि इमैजिनरी इंस्टीट्यूशंस ऑफ़ इंडिया', पार्थ चटर्जी और ज्ञानेंद्र पांडेय (सं.), *सबॉल्टर्न स्टडीज VII,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली.

———— (2010), 'अ स्टेट ऑफ़ कॉन्ट्राडिक्शंस : द पोस्ट-कोलोनियल स्टेट इन इंडिया', सुदीप्त कविराज (सं.), *दि इमैजिनरी इंस्टीट्यूशंस ऑफ़ इंडिया : पॉलिटिक्स ऐंड आइडियाज*, परमानेंट ब्लैक, रानीखेत.

सुहास पलशीकर (2005), 'महाराष्ट्र : दलित पॉलिटिक्स इन द हिंदुत्व ट्रैप', आनंद तेलतुंबड़े (सं.), *हिंदुत्व ऐंड दलित्स : पर्सपेक्टिव फ़ॉर अंडरस्टैंडिंग कम्युनल प्रैक्सिस*, समय, कोलकाता.

वॉल्टर के. ऐंडर्सन और श्रीधर डी. दामले (2018), द *आरएसएस : अ व्यू टू द इनसाइड*, पेंगुइन-वाइकिंग, गुड़गाँव.

विकास पाठक (2015), 'दलित्स वर अपर कास्ट्स : बीजेपी लीडर', द *हिंदू*, 29 अक्टूबर, 2015, वेब पता : https://www.thehindu.com/news/national/dalits-were-upper-castes-bjp-leader/article7815509.ece देखने की तारीख़ : 7 अप्रैल, 2020.

वेंकट धुलिपला (2015), *क्रिएटिंग अ न्यू मदीना : स्टेट पावर, इस्लाम ऐंड द क्वेस्ट फ़ॉर पाकिस्तान इन लेट कोलोनियल नॉर्थ इंडिया*, केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली.